कूदकर नीचे न गिरना तो शायद हो भी सके, परन्तु जगत्‌के किसी पदार्थकी चाहमें पड़कर क्लेशसे, दुःखसे बच जाना कभी नहीं हो सकता। सूर्य्य उदय होनेपर भी प्रकाश न फैले, यह तो कदाचित हो भी जाय, पर हृदयमें पवित्र भाव और ब्रह्मानन्द होनेपर भी शक्तिश्री आदि मानो हमारी पानी भरनेवाली दासी न हो जायं, हो नहीं सकता, कभी नहीं। मीनारपर चढ़कर नक्कारेकी चोट पुकार दो

'सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'

वह सत्य क्या है?

"तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचोविमुञ्चथ" ॥

मुण्डक०

बस इक आत्मज्ञान है अमरित रसकी खान।
और बात बक बक वचन झक झक मरना जान॥

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

ज्ञात्वातंमृत्युमत्येति नान्यः पंथा विमुक्तये।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥
असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चत्।
अस्तिब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः॥
कभी न छूटे पीड़ दुःखसे जिसे ब्रह्मका ज्ञान नहीं॥

जे नर राम नाम लियो नाहीं।
ते नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियें जग माहीं॥
सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिन हरि भजन इँदारुनके फल तजत नहीं करुआई॥

सो संगति जरि जाय कथा नहिं रामकी।
बिन खेतीके बाढ़ भला केहि कामकी ॥
"जो नयन कि बेनीर हैं बेनूर भले हैं" ॥

लक्ष्य

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

शरीररूपी बग्गीमें बैठकर जीवात्माको बुद्धिरूपी साईसद्वारा मनकी लगाम डोरीसे, इन्द्रियोंके घोड़ोंको हांकते-हांकते, आखिर जाना कहां है ?"तद्विष्णोः परमं पदम्"।

लक्ष्य तो ब्रह्म है, ब्रह्म साक्षात्कार बगैर सरेगी नहीं, अनात्मदृष्टि दुःख रूप है। खुशी खुशी (उत्साहपूर्वक) चित्तमें स्नेह मोह आदि रखते हो ? भैय्या ! काले नागको गोद-में दूध पिला पिलाकर मत पालो। सत्यस्वरूप एक परमात्माको छोड़ और कोई विचार मनमें रखते हो ? बन्दूककी गोली कलेजेमें क्यों नहीं मार लेते, मार्गमें कहांतक डेरे डालोगे, रास्तेमें कहांतक मिहमानियां खाओगे, सरायमें मां नहीं बैठी हुई है। आराम अगर चाहते हो तो चलो रामके धाममें।

उपासनाकी आवश्यकता

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥

विज्ञान रहित; अयुक्त मनवाले मनुष्यकी इन्द्रियां बिगड़े हुए घोड़ेकी तरह मंजिलतक पहुँचना तो कहां, रथको और रथमें बैठेको कुँओं और गढ़ोंमें जा गिराती हैं, जहां रोना और दांत पीसना होता है, यदि इसी जन्मके घोर रौरवसे बचना इष्ट हो तो ;घोड़ोंको सिधाना और सीधी राहपर चलाना रूपी

धर्मनियमकी आवश्यकता है। पर लाख यत्न कर देखो, जबतक तुम्हारा साईस (सारथी) धुन्धली आंखोंवाला कानासा है तबतक कीचड़में डूबोगे, रेतमें धसोगे, गढ़े में गिरोगे, चोटें खाओगे, और चिल्लाओगे। बाबा! सांसारिक बुद्धिको सारथी बनाना दुःख ही दुःख पाना है। अब बात सुनो, फतह (जय) इसीमें है कि अपनी मन रूपी बागडोरी दे दो, दे दो उस कृष्णके हाथ, बस अब कोई खतरा नहीं, वह इस संसाररूपी कुरुक्षेत्रसे जयके साथ लेहीं निकलेगा। रथ हांकनेमें प्रसिद्ध उस्ताद है। आवश्यकता है हरिको रथ घोड़े बागडोरियां सब कुछ सौंपकर पास बिठानेकी अर्थात् उपासनाकी।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते" पदार्थ-कामना और विषयवासनासे सर्वसाधारणकी वही गति होती है जो जलमें पड़े हुए तुम्बेकी आंधीके अधीन होगी। ऐसे अनर्थका एकमात्र कारण विषय तो हर वक्त पास रहे और इस रोगकी निवारक औषधि (उपासना, आत्मानुसन्धान) कभी न की जाय तो ऐसी आत्महत्याके बदले अवश्य

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता—

में दारुण दुःख सहने ही पड़ेंगे। यदि कांटोंपर पड़ जानेसे परमेश्वर याद आता हो, तो प्यारे जब देखो कि संसारके काम धन्धोंमें उलझकर राम भूलने लगा है; झटपट अपनेको नुकीले कांटोंपर गिरा दो और कुछ नहीं तो पीड़ाके बहाने वह याद आ ही जायेगा; परदेमें रोना, दिलको पीटना, छिपकर डाढें मारना भी अवश्य फ़ायदा करेगा।

उपासना दो प्रकारकी

प्रसिद्ध है-प्रतीक और अहंग्रह

प्रतीक उपासनामें बाहरके पदार्थों से दृष्टि हटाकर ब्रह्मको देखना होता है। अहंग्रह उपासनामें अपने अन्दर जो अहंता ममता मौजूद है उससे पल्ला छुड़ा ब्रह्म ही ब्रह्म देखना होता है। यदि बाहरके प्रतीकको सत्य जानकर ईश्वरकी कल्पना उसमें की जाय तो वह ईश्वर उपासनाका एक अङ्ग, मूर्तिपूजा वा "बुतपरस्ती" है, इसीपर व्यासजीके ब्रह्ममीमांसा-दर्शनके अध्याय ४ पाद १ सूत्र ५ में यों आज्ञा की है—

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्।

अर्थात् प्रतीकमें ब्रह्मदृष्टि हो, ब्रह्ममें प्रतीकभावना मत करो। और अहंग्रह उपासनाके सम्बन्धमें यों लिखा है:—

आत्मेतितूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥

ब्रह्ममीमांसा ४, १, ३।

अर्थात् ब्रह्मको अपनी आत्मा (अपने आप) बारम्बार चिन्तन करो। वेदका भी यही मत है और यही उपदेश। इन दोनों प्रकारकी उपासनाओंमें अभिप्राय और लक्ष्य एक ही है। वह क्या है, जानते हो ?

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत।

छां० उप०

ठंढी छातीसे अन्दर बाहर ब्रह्महो ब्रह्म देखो।

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः।

पुरुषका जैसा विचार और चिन्तन रहता है वैसा ही वह कालान्तरमें हो जाता है, तो ब्रह्मचिन्तन ही क्यों न दृढ़ किया

जाय—अर्थात् अपने आपको ब्रह्मरूपही क्यों न देखते रहें। इसीपर श्रुतिका वचन है—"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।"

अहंग्रह और प्रतीक दोनोंमें नामरूप (बुत) संसारको छोड़कर धीरे धीरे ब्रह्मकी ओर बढ़ना इष्ट होता है, बुतका बनाना नहीं। जल ब्रह्म है, स्थल ब्रह्म है, पवन ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, गंगा ब्रह्म है—इत्यादि प्रतीक उपासनाका रूपदर्शक वाक्यों-में जल, पवन, आकाश आदिके साथ ब्रह्मको कहीं जोड़ना (संकलन करना) नहीं है। जैसे यह सर्प काला है। इससे यह अर्थ निकलता है कि यह वस्तु (१) सर्प है और (२) काला है। किन्तु यहां तो बाध समानाधिकरण है। जैसे यदि यह कहें कि यह सर्प रस्सी है, तो यहां रस्सी काले रंगकी तरह सर्पके साथ समान सत्तावाली नहीं है, किन्तु रस्सी ही है, सर्प नहीं। इसी तरह सच्ची उपासना वह है कि धारारूप जल-दृष्टिमें न रहे, ब्रह्म चित्तमें समा जाये। स्पन्दरूप पवनदृष्टिसे गिर जाय, ब्रह्मसत्तामात्रही भान हो, प्रतिमामें प्रतिमापन उड़ जाय, चैतन्य स्वरूप भगवानकी झांकी हो। जैसे किसी प्रेमके मतवाले घायलने प्यारेका प्रेमपत्र पढ़ा, उसकी दृष्टि तो प्यारेके स्वरूपसे भर गयी, अब पत्र किसको दीख पड़े, गोपियां उद्धवसे कहती हैं—यह पाती अब कहां रखें, छातीसे लगाती हैं तो जल जायेगी, आंखोंपर धरती हैं तो गल जायेगी। उपासनामें एकदम मग्न होनेके लिये इन्द्रिय-ज्ञान तो ग़ायब हो जायेगा। प्यारेने चुटकी भरी, चुटकी वस्तुतः कोई चीज़ नहीं है, प्यारेही-का वस्तुरूप है। इसी तरह सब इन्द्रियोंका ज्ञान एक ही प्यारेकी छेड़छाड़रूप प्रतीत होगा।

आई पवन ठुमक ठुमक, लाई बुलावा श्यामका।

भाई उपासना तो इसीका नाम है जिसमें जुबानका तो हिलना क्या, शरीरकी हड्डी और नाड़ीतकके एक एक परिमाणु हिल

जायँ। यह नहीं तो आँख मूंदो, नाक मूंदो, कान मूंदो, मुख मूंदो, गाओ चाहे चिल्लाओ। तुम्हारी उपासना बस एक चित्ररूप है, जिसमें जान नहीं। बड़ा सुन्दर चित्र सही, रविवर्माका मान लो, पर खाली तसवीर ही तो है। फिर उसमें क्या धरा है।

पदार्थोंमें इस ब्रह्मदृष्टिको ढूंढ निकालना और विषय-भावनाको एकदम मिटाकर ब्रह्मकी उपासनामें लगाना कुछ वैसा अध्यारोप (कल्पना) शक्तिको बढ़ाना और बरतना न जान लेना जैसा शतरंजमें काठके टुकड़ोंको बादशाह, वज़ीर, हाथी, घोड़ा, प्यादा मान लेते हैं। जल ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, अग्नि ब्रह्म है, मन ब्रह्म है, इत्यादि उपासनाके रूप तो अवस्तुको मिटाकर वस्तु भावनामें जमाते हैं। यदि यह खाली मान लेना और कल्पनामात्र भी हो तो वैसी कल्पना है, जैसे बालक गुरुजी-के कहनेसे गुणा करने और भाग देनेकी रीतिको मान लेता है। भाग देने गुणा करनेकी यह विधि क्यों ऐसी है और क्यों नहीं इस रीति द्वारा उत्तरके ठीक आ जानेमें कारण क्या है, ये बातें तो पीछे आयेंगी, जब बीजगणित (अलजबरा) पढ़ेगा। परन्तु उस गुरु (रीति) पर विश्वास करनेसे उदाहरण सब अभी ठीक निकलने लग पड़ेंगे। पर ख़बरदार! गुरुजीके बनाये हुए गुरु (रीति) को ही औरका और समझकर मत याद करो।

प्रतिमा क्या है? जिससे मान निकाला जाय, मापा जाय, जब तोलनेका बट्टा छोटा हो तो तोलका मान बड़ा होता है, जैसे तोलनेका बट्टा एक पाव होनेपर यदि किसी चीज़का मान चार हो, तो बट्टा एक छटांक होनेपर मान सोलह होगा। अब हिन्दूधर्मके यहां प्रतीक और प्रतिमा क्या थे? ईश्वरको तोलनेका बट्टा। हिन्दूधर्ममें अति उच्च सूर्य चन्द्रमारूपी प्रतीक भी हैं। इससे उतरकर गुरु ब्राह्मण रूप हैं, गौ गरुड़ रूप भी, अश्वत्थ वृन्दारूप भी, कैलास गंगा रूप भी और ठिंगनेसे गोलमोल काले पत्थरको भी प्रतिमा (प्रतीक) रूप स्थापित कर दिया है, यह

छोटेसे छोटा प्रतीक क्या परमेश्वरको तुच्छ बनानेके लिये था ? नहीं जी, प्रतीकका छोटा करना इसलिये था, कि ईश्वरभाव और ब्रह्मदृष्टिका समुद्र बह निकले, जब उस नन्हेसे पत्थरको भी ब्रह्म देखा तो अखिल पदार्थ और समस्त जगत् तो अवश्यमेव ब्रह्मरूप भान हुआ चाहिये। परन्तु जिसने मूर्त्तिपूजा इस समझसे की, कि यह जरासा पत्थर ही ब्रह्म है, वह हो गया "पत्थरका कीड़ा"।

परापूजा

पदार्थके आकार, नाम रूप आदिसे उठकर उसके आनन्द और सत्ता अंशमें चित्त जमाना, पद या शब्दसे उठकर उसके अर्थमें जुड़नेकी तरह चर्मचक्षुसे दृश्यमान सूरतको मूल ब्रह्ममें मग्न होना रूपी जो उपासना है, क्या यह किसी न किसी नियत प्रतीकद्वारा ही की जानी चाहिये ? प्रतीक तो बच्चेकी पाटीकी तरह है, उसपर जब लिखनेका हाथ पक गया तो चाहे जहां लिखे। ब्रह्मदर्शनकी रीति आ गयी, तो जहां दृष्टि पड़ी, ब्रह्मानन्द लूटने लगे। प्रतीक उपासना तब सफल होती है, जब हमें सर्वत्र ब्रह्म देखनेके योग्य बना दे। सारा संसार मन्दिर बन जाये। हर पदार्थ रामकी झांकी कराये; और हर क्रिया पूजा हो जाये।

जेता चलूं तेती परदखना, जो कछु करूं सो पूजा।
गृहउद्यान एक सम जानूं, भाव मिटायो दूजा॥

सच्ची और जीती उपासना जिनके अन्दर यौवनको प्राप्त होती है उनकी अवस्था श्रुति (तैत्तिरीय शाखा) यों प्रतिपादन करती है।

या वद्धचते स दीक्षा, यदश्नातितद्धविः,
यत्पिबति तदस्य सोमपानं, यद्रमते तदुपसदो,

यत्संचरत्युपविशत्युत्तिष्ठतेच प्रवर्ग्यो,
यन्मुखं तदा हवनीयो, याव्याहृतिराहुतिर्यदस्य
विज्ञानं तज्जुहोति ॥

मुक्ति, शान्ति और सुख चाहो, तो भेद-भावका मिटाना और ब्रह्मदृष्टिका जमाना ही एकमात्र साधन है। यह दृष्टि क्यों आवश्यक है? क्योंकि वस्तुतः यही सब कुछ है—

"ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या।"

अगर गर्मी, भाप, बिजली आदिके नियमोंके अनुसार रेल, तार, बैलून आदि यन्त्र बनाओगे तो चल निकलेंगे, और कानूनको भुलाकर लाख यत्न करो, अंधेरी कोठरीसे कहां निकल सकते हो? अब देखो, यह आध्यात्मिक कानून (अभेद भावना) तो तत्वविज्ञान (सायंस) के सब नियमोंका नियम है, जो वेदमें दिया गया है। इस कार्यको परिणत न करते हुए क्योंकर सिद्धि हो सकती है! अमरीकाके महात्मा अमरसेनने अपनी निजकी प्रतिदिनकी अनुभूत परीक्षाको, रूहानी तजरुबेको पक्षपात रहित देखकर क्या सच कह दिया है कि किसी वस्तुको दिलसे चाहते रहना, अथवा दांत निकालकर अधीन भिखारीकी तरह दूसरेकी प्रीतिका भूखा रहना, यह पवित्र प्रेम नहीं है। यह तो अधम नीच मोह है। केवल जब तुम मुझे छोड़ दो और खो दो और उस उच्च-भावमें उड़ जाओ जहां न मैं रहूं न तुम, तब तो मुझे खिंचकर तुम्हारे पास आना पड़ता है और तुम मुझे अपने चरणोंमें पाओगे। जब तुम अपनी आंखें किसीपर लगा दो और प्रीतिकी इच्छा करो, तो उसका उत्तर तिरस्कार अनादरके सिवा कभी और कुछ नहीं मिला, न मिलेगा। याद रक्खो।

भाई! इसमें पन्थाई झगड़ोंकी क्या आवश्यकता है? हाथ कंगन-

को आरसी क्या है ? अगर क्लेशरूपी मौत मंजूर नहीं, तो शान्तिपूर्वक अपने चित्तकी अवस्था और उसके दुःख-सुख रूपी फलपर एकान्तमें विचार करना आरम्भ कर दो, सच झूठ आप निथर ही आयेगा। अगर तुममें विचारशक्ति रोगग्रस्त नहीं है तो खुदबखुद यह फ़ैसला करोगे कि चित्तमें त्याग अवस्था और ब्रह्मानन्दके होते ही ऐश्वर्य्य-सौभाग्य इस तरह हमारे पास दौड़ते आते हैं, जैसे भूखे बालक मांके पास—

यथाहि क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते ।

जब हमारे अन्दर सच्चा गुण और शान्तिरूपी विष्णु होगा, तो लक्ष्मी अपने पतिकी सेवा करनेके लिए हजारोंमें हमारे दर्वाजेपर अपने आप पड़ी रहेगी।

कितने ही मनुष्य शिकायत करते हैं कि भक्ति और धर्म्म करते करते भी दुःख और दारिद्र्य उन्हें सताते हैं और अधर्म्मी लोग उन्नति करते जाते हैं। यह दुखिया भोले भाले कार्य्य कारणके निर्णय करनेमें अन्वय व्यतिरेकको नहीं वर्त्त रहे हैं। इनको यह मालूम ही नहीं कि धर्म्म क्या है और भक्ति क्या। स्वार्थ और ईर्षा (देहाभिमान)को तो उन्होंने छोड़ा ही नहीं,जिसका छोड़ना ही धर्म्मको आचरणमें लाना था। अब उनका यह उलहना कि धर्म्मको वर्त्तते-वर्त्तते दुःखमें डूबे हैं, क्योंकर ठीक कहा जा सकता है ? अगर धर्म्मको ठीक कायदेसे बरता होता, तो यह शिकायत, जिसमें स्वार्थ और ईर्षा दोनों मौजूद हैं, कभी न करते। वह दान और भजन भी धर्म्ममें शामिल नहीं हो सकते जिनसे अहंकार और अभिमान बढ़ जायें। जहां पापी फलता फूलता पाते हो वहां सुखभोगका कारण ढूंढो तो उस पुरुषका चित्त आत्माकार और एकान्त रहा था जो तुमने देखा नहीं,और उसके पापकर्मका परिणाम खोजो तो महाक्लेश होगा, जो अभी तुमने देखा नहीं।

तुमपर किसीने व्यर्थ अत्याचार किया है तो अहंकाररहित होकर पक्षपात छोड़कर तुम अपना अगला पिछला हिसाब विचारो। तुमको चाबुक केवल इसलिये लगा कि तुमने कहीं अयुक्त रजोगुणमें दिल दे दिया था, आत्मसम्मुख नहीं रहे थे, रामके कानूनको तोड़ बैठे थे। मनके ब्रह्माकार न रहनेसे यह सजा मिली। अब उस अनर्थकारी वैरीसे जो बदला लेने और लड़ने लगे हो, ज़रा होशमें आओ कि अपनी पहली भूलको और भी चौगुनी पांचगुनी करके बढ़ा रहे हो और प्रतिक्रियासे उस अपराधी रूप जगत्‌के पदार्थको सत्य बना रहे हो और ब्रह्मको मिथ्या।

बच्चा! याद रखो ऐंठो तो सही, उड़दके आटेकी तरह मुक्के न खाओ और बारबार पटके न जाओ तो कहना। प्रायः लोग औरोंके कसूरपर ज़ोर देते हैं और अपने तईं बेकसूर ठहराते हैं। हां, प्रत्यगात्मारूप जो तुम हो बिल्कुल निष्कलंक ही हो। पर अपने तईं शुद्ध आत्मदेव ठाने भी रहो, चुपड़ी और दो दो क्योंकर बने, अपने आपकी शरीर मन बुद्धिसे तदात्मता करनी और बनकर दिखाना निष्पाप, यही तो घोर पाप है; बाकी सब पापोंकी जड़। अब देखो जो रुद्ररूप कानून तुमको सत्य स्वरूप आत्मासे विमुख होनेपर रुलाये बिना कभी नहीं छोड़ता। वह ईश्वर उस अत्याचारी तुम्हारे वैरीकी बारी क्या मर गया है? कोई उस त्र्यम्बककी आंखोंमें नोन नहीं डाल सकता। बस तुम कौन हो ईश्वरके कानूनको अपने हाथमें लेनेवाले! तुमको पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू। बदला लेनेका खयाल विश्वासशून्य नास्तिकपन है।

ओ प्यारे, मेरे अपना आप, द्वेषातुर मूर्ख! जितना औरोंको चने चवाना चाहता है उतना अपने तईं ब्रह्मध्यानको खांड खीर खिला। वैरीका वैरीपन एकदम उड़ जाय तो सही। ब्रह्म है और ब्रह्मको भूल जाना ही दुःखरूप झमेला है। जो तुम्हारे अन्दर है वही सबके अन्दर है।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ॥

जब तुम अन्दरवालेसे बिगड़ते हो तो जगत् तुमसे बिगड़ता है, जब तुम अन्दरका अन्तर्यामीरूप बन बैठे तो जगत्रूपी पुतलीघरमें फसाद तो कैसा, किस काठके टुकड़ेसे चूं भी हो सकती है ?

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो, यं मनो न वेद, यस्य मनः शरीरं, यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ।

जब तुम दिलके मकर छोड़कर सीधे हो जाओ तो तुम्हारे भूत भविष्य वर्त्तमान, तीनों काल, उसी दम सीधे हो जायेंगे ।

प्यारे ! जैसे कोई मोटा ताज़ा मनुष्य बग्गीमें जा रहा हो तो तुम जानते हो कि उसकी मोटाई फिटनमेंके तकियोंसे नहीं आयी, उसकी पुष्टाईका कारण हिन्हिनाती हुई खच्चरें नहीं हैं, बल्कि अन्नको पचानेसे शरीर बढ़ा फैला है । इसी तरह जहां कहीं ऐश्वर्य्य और सौभाग्य देखते हो, उसका कारण किसीकी चालाकी फन्द फ़रेब कभी नहीं हो सकते । क़समें दिलाकर पूछ देखो । जिस हद्दतक चालाकी फन्द फ़रेब वर्ते गये, उस हद्दतक जरूर हानि (नाकामयाबी) हुई होगी । आनन्द सुखका कारण और कुछ नहीं था, सिवाय ज्ञाततः अथवा अज्ञाततः चित्तमें ब्रह्मभाव समानेके । यह अन्न खाते तुमने उसको नहीं देखा, तो क्या ? और वह खुद भी इस बातको भूल गया है तो क्या (बच्चे कई दफा रातको दूध पीते हैं, और दिनको भूल जाते हैं,) पर भाई तेलको तो तिलोंहीसे आना है, सुख आनन्द इक़बाल कभी नहीं आ सकता बगैर आत्माकार वृत्ति रहनेके ।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥

जब लोग चर्मकी तरह आकाशको लपेट सकेंगे तब देवको जाने बिना दुःखका अन्त हो सकेगा।

दृष्टान्त, प्रमाण, दलील, अनुमानसे तो यह सिद्ध है ही, पर मैं इस समय युक्ति आदिकी अपील नहीं करता, मैं तो बहुत नेड़े (समीप) का पता देता हूं। यह तुम हो और यह तुम्हारी दुनिया है। अब लो, खूब आंखें खोलो। जब तुम्हारे चित्तमें दुनियाके सम्बन्धोंको तुलना ईश्वरके भावसे अधिक हो जाती है, जब 'मैं' मेरा भाव चित्तमें त्याग और शान्तिको नीचे दबाता है, तो जिस दर्जेतक "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" रूपी सत्यकी आचरणसे उपेक्षा करते हो, उसी दर्जेतक दुःख क्लेश तुम्हें मिलता है और अन्धकूपमें गिरते हो। वनस्पति और रसायन-विद्याकी तरह निजके तजरबा और मुशाहिदा, परीक्षा और विचार-से यह सिद्धान्त सिद्ध है।

जगत्‌में रोग एकही है और इलाज (ओषधि) भी एकही। चित्तसे अथवा क्रियासे ब्रह्मको मिथ्या और जगत्‌का सत्य जानना एक यही विपरीत वृत्ति कभी किसी दुःखमें प्रकट होती है कभी किसीमें। और हर विपत्तिकी ओषधि शरीर आदिको "है नहीं" समझकर ब्रह्माग्निमें ज्वाला रूप हो जाना है।

लोग शायद डरते हैं कि दुनियाकी चीज़ोंसे प्रेम किया जाय तो प्रेमका जवाब भी पाते हैं, परन्तु परमेश्वरसे प्रेम तो हवाको पकड़ने जैसा है, कुछ हाथ नहीं आता। यह धोखेका खयाल है, परमेश्वरके इश्कमें अगर हमारी छाती आ धड़के, तो उसकी एक दम बराबर धड़कती है और हमें जवाब मिलता है, बल्कि दुनियाके प्यारोंकी तरफसे मुहब्बतका जवाब जब ही मिलता है जब हम उनकी तारीफसे निराश होकर ईश्वर-भावहीकी ओर लगते हैं।

किसीने कहा, लोग तुम्हें यह कहते हैं, कोई बोला, लोग तुम्हें वह कहते हैं, कहीं हाकिम बिगड़ गया, कहीं मुकदमा आ पड़ा,

कहीं रोग आ खड़ा हुआ। ओ भोले महेश! तू इन बातोंसे अपने तकलेमें व्यंग न पड़ने दे, भरमें मत आ, तू एक न मान, ब्रह्म बिना दृश्य कभी हुआ ही नहीं, चित्तमें त्याग और ब्रह्मानन्द-को भर तो देख, सब बलायें आंख खोलते खोलते सात समुद्रों पार न बह जायें, तो मुझको समुद्रमें डुबो देना।

एक बालकको देखा जो दूसरे बालकको धमका रहा था, "आज पितासे तू ऐसा पिटेगा, ऐसा पिटेगा, कि सारी उमर पड़ा याद करे" दूसरे बालकने शान्तिसे उत्तर दिया, "अगर वह मुझे मारेंगे तो भले हीको मारेंगे न, तेरे हाथ क्या लोगा?" इस बालकके बराबर विश्वास तो हम लोगोंमें होना चाहिये, भयंकर भयानक भावीकी भनक पाकर बगुलेकी तरह गरदन उठाकर, घबराकर, "क्या? क्या?" क्यों करने लगे। आनन्दसे बैठ, मेरे यार! वहां कोई और नहीं है, तेरा ही परमपिता, बल्कि आत्मदेव तो है, अगर मारेगा भी तो भलेके लिये। और अगर तुम उसकी मर्जीपर चलना शुरू कर दो तो वह पागल थोड़ा है, कि योंही पड़ा पीटे।

एकाग्रतामें विघ्न

(१) मिथ्या कारण सत्तामें विश्वास

अपने तई पूरा पूरा और सारेका सारा परमात्माके हवाले कर देनेका मजा तबतक तो आ नहीं सकता, जबतक संसारके पदार्थोंमें कारणत्व सत्ता भान होती रहेगी, अथवा जबतक ईश्वर हर बातका एकमात्र कारण प्रतीत न होने लगेगा।

अरबी, फारसी, उर्दू में कारणको 'सबब' कहते हैं, और अरबीमें सबबका पहला अर्थ है "डोर-रस्सा"। रूम देशका स्वामी जलाल (जो उन लोगोंकी भाषामें 'मौलाना जलाल' इस नामसे प्रसिद्ध है) लिखता है, "यह कारण-कार्य्य-भावरूपी रस्सा जो इस जगत्कूपमें सब वस्तोंके गलेमें बंधा पाते हो, यह क्यों फिरता

है, इस येप्राण रज्जुको तो क्या फिरना था, कूपमें सिरपर देव चर्खी घुमा रहा है, पर हमें रस्साही सब घटयन्त्रको चलाता भान होता है, कारणं कारणानां तो देव ही है ।

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न वाह्याञ्छब्दांछक्नुयाद्ग्रहणाय दुन्दुभेस्तुग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥
स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न वाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद् । ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य शब्दोगृहीतः ॥
स यथा वीणायै वाद्यमानायै वाह्याञ्छब्दाञ्छक्नुयाद ग्रहणाय वीणायैतु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ॥

जैसे ढोल, मृदङ्ग, शङ्ख, वीणा, हार्मोनियम आदिकी आवाजें सब अपने आपही पकड़ी जाती हैं, जब हम इन वाजों वा यन्त्रों-को क़ाबूमें करते हैं। इसी प्रकार संसारकी कार्य्य-कारण-शक्ति एक दम हमारे अधीन हो जायगी, जब हम एक परमात्मा देवको पक्की तरह पकड़ लेवेंगे ।

किसी बड़े आदमीकी सिफ़ारिश विद्या, बल, धन, माल, मकान आदिको जो अपनी आशापूर्तिमें कारण और हेतु ठान बैठते हो और आत्मदृष्टिका आश्रय नहीं लेते, धोखेमें गिरते हो, दुःख पाओगे ।

कहते हैं कृष्ण जब गोपिकाओंका दूध माखन आदि खाता था तो कुछ दधि आदि घरमें बन्धे हुए बछड़ोंकी थोथनीपर लगा देता था। घरवाले अपने ही बछड़ोंको चोर समझकर उन गरीबोंको बहुत मारते-पीटते और अपनाही नुक़सान करते थे। प्यारे! कारण तो हर बातका एकमात्र भगवान है, बाक़ी कारण तो केवल चिट्टी थोथनीवाले बेचारे बछड़े हैं। कङ्गले दीवालियोंके नाम हजारीलाल, लखपतराय, करोड़ीमल आदि रखे हुए हैं ।

क्यों चक्करमें मारे मारे फिरते हो ? ऊपरके सांसारिक मिथ्या लिंग हेतु आदिपर मत भूलो, यह असली कारण नहीं। जबतक लड़की व्याही नहीं जाती गुड़ियोंसे जी बहलाती है। कारणोंका कारणरूप परब्रह्म जब मिल सकता है तो मिथ्या कारणोंसे जी-बहलावा क्यों करना ?

भानमतीका तमाशा हुआ। पुतलियाँ नाचती हैं। "एकने दूसरीको बुलाया, इसलिये वह आ गयी। एकने दूसरीको पीटा, इसलिये वह मर गयी।" इस प्रकारके कार्य्य-कारण-भावपर प्रायः मनुष्य भूल रहे हैं, असली कारण तो एक पुतलीगर (अन्तर्यामी) सूत्रधार है।

गीत या बांसुरी सुनने लगे, एक स्वरके बाद दूसरा स्वर आया, एक शब्द दूसरे शब्दको अवश्य लाया, इन शब्दों और स्वरोंका आपसमें आवश्यक लगाव है, इस प्रकारके कार्य्य-कारण भावपर लोग भूल बैठते, असली कारण तो गानेवाला (वंशीधर) है।

एक ऊंचा मकान था, शिखरकी मंज़िलका आश्रय क्या है; उससे निचली मंज़िल और उसका आश्रय उसके नीचेकी मंज़िल फर्शकी मंज़िल बाकी सबका आश्रय और कारण! इस प्रकारके काय-कारण-सम्बन्धपर लोग भूल बैठते हैं। असली सजीव कारण तो इन सब मंज़िलोंका मकान बनानेवाला (कर्ता, हर्ता) है।

संसारके कारणोंको आशाकी आंखसे ताकना तो खारी समुद्रमें डूबतेको तिनकेका सहारा है। जब गोपालचन्द्र (कृष्ण) को वहां सुदर्शन जुड़ा नहीं, रथका चक्र उठाकर ही अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी ली, (भीष्म) बुड्ढेको भी यह लड़कपन देख बड़ी हँसी आयी। अब फिर वही काम न होने पाये। यह चर्मचक्षुसे नज़र आनेवाले कारण, आश्रय, सहारे, इनको ताकना तो अनुचित रथके चक्रको उठाना है। इनसे क्या बनेगा ? तुम अपने असली स्वरूपको तो याद करो, आंखों

खोलो किस चक्करमें पड़े हो, किस झगड़ेमें अड़े हो, किस कलकलमें फंसे हो? तुम तो वही हो, वही। ज़रा देखो अपने असली सुदर्शनकी तरफ़, तुम्हारे भयसे सूर्य्य कांपता है, तुम्हारे डरसे पवन चलता है, तुम्हारे खौफसे समुद्र उछलता है, तुम्हारे चाबुकसे मौत मारी मारी फिरती है।

भीषास्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्य्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

य डरसे मेहर * आ चमका, अहाहाहा अहाहाहा।
उधर मह † बीमसे ‡ लपका, अहाहाहा अहाहाहा॥
हवा अठखेलियां करती है मेरे इक इशारेसे।
है कोड़ा मौतपर मेरा, अहाहाहा अहाहाहा॥

अरे प्यारे! विषयोंके वश रहना तो पराधीनतामें मरना है, इस बेबसीका जीना तो शरीरको क़ब्र बनाकर मुर्देकी तरह सड़ना है। "निर्ममो निरहंकारः" हुए आत्मज्योतिः शरीरमेंसे इस प्रकार फैलती है जैसे फ़ानूसमेंसे प्रकाश। जिस कार्य्यमें ऊपरके लक्षण देखकर अनुमानके आश्रय आशाकी पाशमें दिल फंसा दिया जाय, वह कार्य्य कभी नहीं होगा। जिनको अनुमान और लक्षण मान रक्खा है मनुष्यको मिथ्या संसारमें इस प्रकार फंसाते हैं जैसे मछली-को मांसकी बोटी जालमें (कुंडीमें)। जब ऊपरी कारणोंको दिलमें न जमाकर, स्वार्थांशको त्यागकर, कोई भी कार्य्य इस भावनासे किया जाय कि "हे राम! यह तुम्हारा ही काम है। तुम्हारा है, इसलिये मैं अपना समझता हूं। जो तुम्हारी मर्ज़ी सो मेरी मर्ज़ी, कार्य्यके होने न होनेमें मुझे हानि नहीं, लाभ नहीं, मेरा आनन्द तो केवल तुम्हारे साथ अभेद रहनेमें है, कामको यदि संवार दो, तो वाह

* सूर्य्य † चन्द्र ‡ खौफ

वाह !", जब सच्चे दिलसे यह भावना और यह दृष्टि हो, तो क्या दुनिया और दुनियाके कानूनोंको शामत आयी है कि चाकरोंकी तरह तत्काल सब काम न करते जायें। भला रामके काममें भी अटकाव हो सकता है ? भगवद्गीताके मध्यमें जो श्लोक कि गीताको आधा इधर और आधा उधर गुरुत्व केन्द्रकी तरह तौल देता है, वह है :—

अनन्याश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

भगवानका यह तमस्सुक (इकरारनामा) तब भी झूठ नहीं होगा जब अग्निकी ज्वाला नीचेको बहने लगे, और सूर्य पश्चिममें उदय होना आरम्भ कर दे और पूर्वमें अस्त।

यार! मनुष्य-जन्म पाकर भी हैरान और शोकातुर रहना बड़ी शर्म (लज्जा) की बात है। शोक-चिन्तामें वह डूबें, जिनके मां बाप मर जाते हैं, तुम्हारा राम तो सदा जीता है, क्या ग़म ? ज़रा तमाशा तो देखो, छोड़ दो शरीरकी चिन्ताको, मत रखो किसीकी आस, परे फेंको वासना, कामना, एक आत्मदृष्टिको दृढ़ रखो, तुम्हारी खातिर सबके सब देवता लोहेके चने भी चाब लेंगे।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥
(शु० यजु० अ० ३१)

सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति ॥ बृह०॥
सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥ तैत्त०॥

न पश्योमृत्युं पश्यति, न रोगं, नाति दुःखतां,
सर्वं ह पश्यः पश्यति, सर्वमाप्नोति सर्वशः ॥
छान्दोग्य० ॥

कोई सन्दिग्ध शब्दोंमें तो वेदने कहा ही नहीं। जब सर्वात्म-दृष्टि हुई तब रोग,दुःख और मौत पास नहीं फटक सकते, आत्माको जाने क्या नहीं जाना जाता, और हर प्रकारसे हर पदार्थ मिल जाता है।

(२) द्वैतदृष्टि

आनन्द-धामको चित्त चला तो वैरी-विरोधीका ख्याल डाकूरूप होकर चित्तको ले उड़ा।

युरोपमें एक दिन एक तत्वविज्ञानका लायक डाक्टर (आचार्य्य) अपने पास आनेवालोंकी कुछ निन्दासी करने लगा, उससे पूछा, "आप शिकायत करते हो ?" तो बोला, "नहीं, मैं उनके चित्तकी आध्यात्मिक दशापर विचार करता हूं।"

दुनियामें हमलोग बराबर यही तो करते हैं। द्वैतदृष्टि (और दुष्ट भाव) को कोई श्रेष्ठसा नाम देकर आंखोंपर परदा डाल लिया और इस सर्पिणीको बराबर छातीसे लगाया किये।

फिर जब कहा गया, "प्यारे डाक्टर ! सम्बन्धवालोंकी आध्यात्मिक दशा अकेली विचारके योग्य नहीं होती। अपनी आभ्यन्तरिक दशा भी उसके साथ-साथ विचारणीय है। साथी जो बिगड़े चित्तवाले मिले हैं, तो क्या आजकल आपकी आभ्यन्तरिक अवस्था बिलकुल दूषण-रहित थी ?" डाक्टर आदमी था सचा, कुछ देर चुप रहकर विचारकर बोला, "स्वामिन् ! कहते तो बिलकुल सच हो।" वास्तवमें जैसा मेरा चित्त होता है वैसे चित्त और स्वभाव मेरे पास आकर्षित हो जाते हैं, औरोंकी अवस्थापर भला बुरा चिन्तवन करते रहनेसे कभी झगड़ा निपटता भी नहीं, उन लोगोंको क्या पकड़ूं, सब मनोंका मन मैं हूं, सब चित्तका चित्त मैं हूं। अन्दरसे ऐसी एकता है कि अपने तईं शुद्ध करते ही सब शुद्ध ही शुद्ध पाता हूं। समीपका इलाज (अपने तईं ब्रह्ममय कर देना) तो हम करते नहीं, दूरके बन्दोबस्त (औरोंके सुधार)

को दौड़ते हैं। न यह होता है न वह। ईश्वर-दर्शन तो तब मिलेगा जब सांसारिक दृष्टिसे प्रतीयमान वैरी-विरोधी निन्दक लोगोंको क्षमा करते हम इतनी देर भी न लगाएं, जितना श्रीगंगाजी तिनकोंको बहा ले जानेमें लगाती हैं या जितनी आलोक किरणें अन्धकारके भगानेमें लगाती हैं।

जबतक सर्व पदार्थोंमें समधी नहीं होती तबतक समाधि कैसी? विषम दृष्टि रहते, योगकी समाधि और ध्यान तो कहां, धारणा भी होनी असम्भव है। समदृष्टि तब होगी जब लोगोंमें भलाई-बुराईकी भावना उठ जाय। और यह क्योंकर उठे? जब लोगोंमें भेद-भावना उठ जाय और पुरुषोंको ब्रह्मसे भिन्न मानकर जो अच्छा-बुरा कल्पना कर रक्खा है न करें। समुद्रमें जैसी तरंगें होती हैं, कोई छोटी कोई बड़ी, कोई ऊंची कोई नीची, कोई तिर्छी कोई सूधी, उनकी सत्ता समुद्रमें अलग नहीं मानी जाती, उनका जीवन भिन्न नहीं जाना जाता। इसी तरह अच्छे-बुरे आदमी और अमीर-गरीब लोग तरंगें हैं; जिनमें एकही ब्रह्म-समुद्र ढाढ़ें मार रहा है, अहाहाहा! अच्छे-बुरे पुरुषोंमें जब हमारी जीवदृष्टि उठ जाय और उनको ब्रह्मरूपी समुद्रकी लहरें जान लें, तो राग-द्वेषकी अग्नि बुझ जायेगी और छातीमें ठंढक पड़ जायेगी। जो लहर ऊंची चढ़ गयी है वह अवश्य नीचे गिरेगी, इसी तरह जिस पुरुषमें खोटापन समा गया है, उसे अवश्य दुःख पाना ही है। परंतु लहरोंके ऊंच और नीच भावको प्राप्त होते रहनेपर भी समुद्रकी पृष्ठको क्षितिज धरातल ही माना है। इसी तरह वीचिरूप लोगोंके कर्म और कर्मफलको प्राप्त रहनेपर भी ब्रह्मरूपी समुद्रकी समतामें फर्क नहीं पड़ता। लहरोंका तमाशा भी क्या सुखदायी और आनन्दवर्द्धक होता है, पर जहां जो पुरुष उनसे भींग जाये या डूबने लगे, उसके लिये तो उपद्रव रूप है। समुद्रदृष्टि होनेसे समधी और समाधि होगी।

(३) स्वार्थ-कपट

उपासनाकी जान समर्पण और आत्मदान है, यदि यह नहीं तो उपासना निष्फल और प्राणरहित है। भाई! सच पूछो तो हर कोई लेनेका यार है। जबतक तुम अपने दुःख और अहंकारको परमेश्वरके हवाले न करोगे, तो तुम्हारे पास बैठना तो कैसा, तुमसे कोसों भागता फिरेगा, जैसे कृष्ण भगवान कालयमनसे! उस आंखोंवाले प्रज्ज्वलितहृदय सूरदासने बिलबिलाते बच्चेकी तरह क्या ज़ोरसे सच कहा है :—

किन तेरो गोविन्द नाम धर्‌यो।
लेन-देनके तुम हितकारी मोते कछु न सर्‌यो॥
विप्र सुदामा कियो अजाची तन्दुल भेंट धर्‌यो।
द्रुपदसुताकी तुम पति राखी अम्बर दान कर्‌यो॥
गजके फन्द छुड़ाये आकर पुष्प जो हाथ पर्‌यो।
सूरकी बिरियां निठुर ह्व बैठे कानन मूंद धर्‌यो॥

यदि चाहो कि परीक्षा तो करें कि भजन (उपासना) से फल मिलता है कि नहीं, तो प्यारे! याद रहे 'परीक्षाका भजन असंगत है और असम्भव है, क्योंकि निष्कपट भजन तो होगा वह, जिसमें फल और फलकी इच्छावाले अपने आपको इस तरह परमेश्वरके भेंट कर दें; जैसे अग्निमें आहुति।

यह बिनती रघुबीर गुसाईं॥
और आस-विश्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई॥
चहौं न सुगति सुमति सम्पति कछु रिधिसिधि बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़े अनुदिन अधिकाई॥

यदि कोई कहे, आहुति हो जानेमें क्या स्वाद रहा! तो

ऐसा पूछनेवालेको स्वाद (आनन्द) का स्वरूप ही विदित नहीं, खुद (अहंभाव) के लीन हो जानेका ही नाम है स्वाद, आनन्द।

बच्चेने जब अपना नन्हासा तन और भोलाभाला मन, माताकी गोदमें डाल दिया, तो सारे जहानमें उसके लिए कौनसा आराम शेष रहा, और कौनसी चिन्ता बाक़ी रही। आंधी हो, वर्षा हो, भूकम्प हो, कुछ हो, उसका बाल बांका नहीं होगा, कैसा निर्भय है, क्या मीठी नींद सोता है और सलोनी जाग्रत उठता है।

(४) प्रकृति-नियमभङ्ग

जबतक तुम्हारी शरीरकी क्रिया उपासनारूप न हो, तुम्हारा ऊपरसे उपासना करना व्यर्थ दिखलाना है, निष्फल मन पछतावा है। क्रियारूप उपासनाका यह अर्थ है कि खाने, पीने, सोने, व्यायाम आदिमें जो प्रकृतिके नियम हैं, उनको रत्तक मात्र भी न तोड़ा जाय। विषय-विकार स्वादोंमें पड़ना आचरणसे ईश्वरकी आज्ञा भङ्ग करना है, जिसका दण्ड रोग, व्याधि आदि अवश्य मिलना है। और जब पीड़ारूपी कारागारमें बेंत पड़ रहे हों, उपासना कहां हो सकती है! जिस पुरुषका स्वभाव वैसी ही क्रिया आदिकी तरफ ले जाय जैसा ईश्वरीय नियम चाहते हैं, जिस पुरुषकी इच्छा वही उठे जो मानों ईश्वरकी इच्छा है, जिसकी आदत प्रकृतिकी आदत हो, वह आचरणसे शिवोहम गा रहा है। उसे दुःख कहांसे लग सकता है।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः

मुण्डक उपनिषद्में यहां बलसे तात्पर्य शरीरकी आरोग्यता है और अध्यात्म बल भी है, जिसको अध्यवसाय भी कहते हैं। गीताकी "प्रज्ञा प्रतिष्ठा" भी बलरूप है।

निद्रा क्यों आवश्यक है :—प्रति दिन कामकाज करते करते मनुष्य प्रायः संसार और शरीर आदिको सत्य मानने लग पड़ते हैं। परन्तु कामकाजके लिये शक्ति बल तो आनन्द स्वरूप आत्मदेवसे ही आता है जिसकी सत्ताके आगे संसारकी नाम रूप सत्ता वा भेद भावना रह नहीं सकती। जगत्के धन्धोंमें फँसे हुएको नित्यप्रति निद्रा घेरकर पृथ्वीपर फेंककर यह सबक पढ़ाती है कि यह जगत् है नहीं, आत्मा ही आत्मा है, क्योंकि निद्रामें संसार मिथ्या हो जाता है और अज्ञानतः एक आत्मा ही आत्मा शेष रह जाता है।

पोल निकाली जगतकी, सुषुप्त्यावस्था मांहि ।
नाम रूप संसारकी, जहां गन्ध भी नाहिं ॥
स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते ॥

सुषुप्तिद्वारा अज्ञानतः परमतत्त्वमें लीन हुए इस क़दर शक्ति बल आ जाता है तो उपासना ध्यान आदि द्वारा ज्ञानतः परम तत्त्वमें लीन हुए शक्ति बल, आनन्द क्यों न बढ़ेंगे ?

जब देखो कि चिन्ता; क्रोध, काम, (तमोगुण) घेरने लगे हैं, तो चुपके उठकर जलके पास चले जाओ। आचमन करो, हाथ, मुंह धोओ, या स्नान ही कर लो। अवश्य शांति आ जायगी और हरि ध्यान रूपी क्षीरसागरमें डुबकी लगाओ क्रोधके धुएं और भापको ज्ञान अग्निमें बदल दो।

उपासनामें आवश्यकगुण

उदारता

उपासनाकी चेटक यज्ञ कर्म और दानसे लगनी आरम्भ होती

है। जब कुछ चीज़ यज्ञमें या और समयपर दी गयी तो चित्तमें ठण्ढक और शांति व्यापी, यह रस फिर लेनेको जी करने लगा। बाहरके स्थूल पदार्थ कभी कभी देते दिलाते अति कठिन और सूक्ष्मदान अर्थात् चित्त वृत्तिका हरि चरणोंमें खोया जाना भी शनैः शनैः आ जाता है। उपासना ध्यानका रंग जमने लगता है। अब यहांपर इतना विस्मयजनक है कि जिसे एक दृष्टिसे हमने खो देना (दान) कहा है वह दूसरी ओरसे देखें तो लूट लेना है। भक्ति (उपासना) चित्तकी उस दर्जेकी उदारताका नाम है जिसमें अपने आप तकको उछालकर हरि नामपर वारकर फेंक दिया जाय। उपासना-आनन्दको तंग दिलवाला कभी नहीं पा सकता; जिसका दिल बाद-शाह नहीं; वह क्या जाने भक्तिरसको ? और बादशाह वह है जिसका अपने दिलके भीतरसे एक लंगोटी (कौपीन) के साथ भी दावा न हो।

धन चुराया गया; रोता क्यों है ? क्या चोर ले गये ? रो इस समझपर! प्यारे! और कोई नहीं है लेने लेजाने वाला; एक ही एक, शुक्रकी आंख, यार, प्यारा अनेक बहानोंसे तेरा दिल लिया चाहता है। गोपियोंके इससे बढ़कर और क्या सुकर्म होंगे कि कृष्ण मक्खन चुराये। धन्य हैं वह जिनका सब कुछ चुराया जाय; मन और चित्त तक भी बाकी न रहे।

ककुभाय स्वेनानां पतये नमः
नमो निचेरवे परिचराय
तस्कराणां पतये नमः॥ शु० यजु० सं०॥

ऋग्वेद और यजुर्वेदके पुरुष सूक्तमें दिखाया है कि जब ऋषि, देवता लोगोंने विराट् पुरुषकी हवि दे दी तो उनके सब काम स्वयं ही सिद्ध होने लग पड़े। वहासे जगत्की उत्पत्ति हुई। बृहदारण्यकोपनिषद्के आदिमें समस्त संसाररूपी अश्वका मेध किस मनोहर रीतिसे वर्णन किया है। वाह वाह! जब

तक नाम रूप समस्त संसार और विराट् रूप समग्र जगत् सम्यक् प्रकारसे दान न कर दिया जाय, और यज्ञ वलिमें आहुति न कर दिया जाय, तब तक अमृत चखनेका मुंह कहां ?

"सर्व खल्विदं ब्रह्म" रूपी ज्ञानकी अग्निमें जगत्के पदार्थ और उनकी कामनाका विपट्कार हो जाय तो साम्राज्य (वा स्वराज्य) की प्राप्तिमें देर ही क्या है ?

राजा वलिने जलका करवा हाथमें लेकर तीनों लोक भगवानको दान कर दिये, तुमसे एक असुरके बराबर भी नहीं सरती। अपने शिर रूपी चमस वा खप्परको हथेलीपर ले सारे संसारमें सत्ता दृष्टि कर दो ब्रह्मके हवाले। बला टली, बोझ हटा और फिर ईश्वरको भी ईश्वरत्व देने वाले तुम हो, सूर्य्य चन्द्रमा भी तुम्हारे भिखारी हैं।

लोग कहते हैं, जी ! भजनमें मन नहीं ठहरता, एकाग्रता नहीं होती। एकाग्रता भला कैसे हो, कृपणताके कारण बन्दरकी तरह मुट्ठीसे पदार्थोंको तो छोड़ते नहीं और मुट्ठीमें लिया चाहते हैं रामको। आखिर ऐसा अनजान (भोला) तो वह भी नहीं कि अपने आपही हत्थे चढ़ जाय।

जहां राम तहां काम नहिं, जहां राम नहिं काम ॥

राम तो उसको मिलता है जो हनुमानकी तरह हीरों और जवाहिरोंको फोड़कर फेंक दे, "यदि उनमें राम नहीं हैं तो इस इनामको कहां धरूं, क्या करूं" ॥

कुन्दकुञ्जमसु पश्य सरसिरुह लोचने।
अमुना कुन्द कुञ्जेन सखि मे किं प्रयोजनम् ?

'मु' रहित 'कुन्द' कुञ्जको मैं क्या देखूं ? अर्थात् मुकुन्द नहीं तो कुन्द कुञ्जको आग लगाऊं ? भजन करते समय निर्लज्ज चित्तमें मकानके, खान पानके अपने मान, अपनी जानके ध्यान

आ जाते हैं। मूर्खोंको इतनी समझ नहीं कि यह चीज़ें चिन्तन योग्य नहीं; चिन्तन योग्य तो एक राम है।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥

प्रभुका डेरा हमारे चित्तमें लगे, तो फिर कौन सी आशा है जो अपने आप पूरी न पड़ी होगी?

जब तक पदार्थमें सत्ता दृष्टि है, या उसमें चित्त लगाये हुए हो, सिर पटक मारो, वह पदार्थ कभी नहीं मिलेगा, या सुख-दायी होगा। जब यत्नतः अथवा स्वाभाविक उस पदार्थसे दिल उठता है, अर्थात् आत्मारूपी अग्निकुण्डमें वह चीज़ पड़ती है, मनमें यज्ञ हो जाता है तो स्वयं इष्ट पदार्थ हाजिर हो जाता है। हिमालय पर्वतको ठोकरसे गेंदकी तरह शायद कभी उछलने भी लग पड़े, परन्तु यह कानून बालके बराबर कभी इतर नहीं हो सकता।

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद,
क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो क्षत्रं वेद
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद,
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो सर्वं वेद
इदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानि
इदꣳ सर्वं यदयमात्मा ॥ बृहदारण्यकोपनिषद् ॥

बात बातमें राम दिखाता है, कि मैं ही हूं, जगत् है नहीं। अगर जगत्की चीजें हैं, तो केवल मेरा कटाक्ष है।

भाई! समाधि और मनकी एकाग्रता तो जब होगी, जब तुम्हारी नज़रसे माल, धन, बंगले, मकानपर मानों हल फिर जाये,

स्त्री, पुत्र, वैरी, मित्रपर सुहागा चल जाये, सब साफ़ हो जाये, रामही रामका तूफ़ान (अब्धि) आ जाये, कोठे दालान बहा ले जाये।

अत्र पिताऽपिता भवति, माताऽमाता, लोका अलोकाः, देवा अदेवाः, वेदा अवेदाः, अत्रस्तेनोऽस्तेनो भवति, भ्रूणहाऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसः। बृहदारण्यकोपनिषद्॥

जानेकी कोई ठौर ही न रही तो फिर भटुवे मनको कहां जाना है? सहज समाधि है।

जैसे काग जहाजको सूझत और न ठौर।
मोहिं तो सावनके अन्धहिं ज्यों सूझत रङ्ग हरो।

क्या मांगना भी उपासनाका अङ्ग है?

मांगना दो प्रकारका है, एक तो तुच्छ "मैं" (अहंता, ममता) को मुख्य रखकर अपनी वृद्धि और भोग कामनाके लिये प्रार्थना करनी और दूसरा ज्ञानप्राप्ति, तत्वदर्शन, हरिसेवाको परम प्रयोजन ठानकर आत्मोन्नति मांगना। प्रथम प्रकारकी प्रार्थना तो मानों ईश्वरको तुच्छ नाम रूप (जीव) का अनुचर बनाना है। अपनी सेवाकी ख़ातिर ईश्वरको बुलाना है, उलटी गंगा बहाना है। द्वितीय प्रकारकी प्रार्थना सीधी बाटपर जाना है।

आत्मामें चित्तके लीन होते समय जो भी सङ्कल्प होगा, सत्य तो अवश्य हो ही जायगा, परन्तु यदि वह सङ्कल्प अज्ञान, अधर्म्म और स्वार्थमय है तो कांटेदार विषभरे अङ्कुरकी नाईं उगकर दारुण परिणामका हेतु होगा। अहंता-ममता और भोग-कामना-सम्बन्धी ईश्वरसे प्रार्थना मैले तांबे (ताम्र) के बर्तनमें

पवित्र दूधको भरना है। दुःख पाकर जो सीखोगे तो पहिले ही अपवित्र वासनाको क्यों नहीं त्याग देते। अशुभ भावनामें औरोंका भी बुरा होता है और अपनी भी खराबी। शुभ भावना, पवित्र भाव विज्ञानकी प्राप्तिमें न केवल अपना ही कल्याण होता है वरंच परोपकार भी। मनमें सत्वगुण, शान्ति, आनन्द और शुद्धि हो तो हमारे काम स्वयं ईश्वरके काम होते हैं। पूरे होते देर लग ही नहीं सकती।

भागवत पुराणमें एक जगह यह श्लोक दिया है।

देवासुर मनुष्येषु ये भजन्त्य शिवं शिवं।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम्॥

अर्थात् आप जो भी कोई त्यागी शिवकी उपासना करते हैं वे धनवान हो जाते हैं। इस श्लोकमें शिव और विष्णुकी छोटाई बड़ाई दिखानेका तात्पर्य्य नहीं है। शिव और विष्णु तो वस्तुतः एकही चीज़ हैं। किन्तु, अभिप्राय यह है कि जिन लोगोंके हृदयमें शिवरूप त्याग और वैराग्य बसा है, ऐश्वर्य्य, धन, सौभाग्य उनके पास स्वयं आते हैं और जिन लोगोंके अन्तः-करण लक्ष्मी, धनदौलतकी लागमें हैं वे दरिद्रताके पात्र रहते हैं जैसे जो कोई सूर्य्यकी तरफ पीठ मोड़कर पकड़ने दौड़ता है छाया उससे आगे बढ़ती जाती है, कभी काबूमें नहीं आती, और जो कोई छायासे मुंह फेरकर सूर्य्यकी ओर दौड़े तो छाया अपने आपही पीछे भागती आती है, साथ छोड़ती ही नहीं।

कौन प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है—जिसमें हमारा स्वार्थांश इतना कम हो, कि मानों वह सत्य स्वभाव ईश्वरका अपना ही काम है और यदि उपासनाके समय मारे आनन्दके चित्तकी यह दशा हो रही हो—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥

तो यही अवस्था महावस्था है और इस कारण सत्य कामना और सत्य संकल्पता तो स्वभावतः आ जाती है।

यह तो रही अति उत्कृष्ट उपासना। उपासनाकी जरा न्यून स्थिति बच्चेकीसी श्रद्धा और विश्वास है, और यह निष्ठा भी क्या प्यारी प्यारी और प्रबल है! बच्चा अपने मातापिताको अनन्त शक्तिमान मानता है और उनके बलको अपना बल समझकर माताकी गोदमें बैठा हुआ शाहनशाही करता है, रेलको भी धमका लेता है, पवन और पक्षियोंपर भी हुकुम चलाता है, दरियाको भी कोसने लगता है और कोई चीज़ असम्भव जानता ही नहीं। चन्द्र-सूर्य्यको भी हाथमें लिया चाहता है:—

चांद खिलोना ले देरी मैया, चांद खिलोना ले दे।

धन्य हैं वे पुरुष उच्च भाग्यवाले, जिनका इस जोरका विश्वास सचमुच सर्वशक्तिमान पितामें जम जाय, जो कुछ भी दरकार हुआ, झट देवका पल्ला पकड़ा और करवा लिया, दूध मांगना हो तो देवसे, भोजन वस्त्र मांगना हो तो देवसे। क्या अच्छा कहा है—

जग जाचये कोउ न जाचये जे जिया जाचये जानकीजानहिंरे॥
जेहि जाचत जाचकता जर जाहि जहिं जारे जोर जहानहिंरे।

दुःखी दुष्टमें और रंगीले मतवाले मस्तमें फरक सिर्फ इतना है कि एकके चित्तमें कामना अंश ऊपर है, भक्तिअंश नीचे। दूसरेके, चित्तमें राम ऊपर है और काम नीचे। एक यदि साक्षर है तो उलटपलटसे दूसरा राक्षस है।

जब प्रेम और त्यागका अंश उपासनामें याचना अंशसे

अधिक हो तो वह मांगना भी एक तरह देनेहीके तुल्य है। पर भाई! सच बात तो है यूं, कि मांगना सच्ची उपासनाका कोई अंग नहीं, हां देना (उदारता) तो उपासना रूप है। जब अपने मतलबके लिये मैं तुम्हारी सेवा करूं, तो इसमें तुम्हारी भक्ति काहेकी, वह तो दूकानदारी है या ठगबाजी। मंगते भिखारी-को कोई पास नहीं छूने देता, परमेश्वर तो बादशाह है, भिख-मंगे कंगाल बनकर उसके पास जाओगे तो दूरहीसे दुर-दुर पड़ी होगी। बादशाहसे मिलने चले हो, परे फेंको मैले कुचैले, फटे पुराने इच्छारूपी चीथड़े! खानोंके खानके मेहमान, जबतक तुम बादशाह न बनोगे, बादशाहके पास नहीं बैठ सकते। इच्छा-कामनाकी गन्धतक उड़ा दो, जमकर बैठो त्यागके तख्तपर और वह तुम्हारे पाससे कभी हिल जाय तो मुश्कें बांध लेना।

टूने कामन करके नी मैं प्यारा यार मनावांगी।
इस टूने नूं पढ़ फूकांगी सूर्ज अग्न जलावांगी॥
सात समुन्दर दिल दे अन्दर दिलसे लहर उठावांगी।
बदली होकर चमक डरावां बन बादल घर घर जावांगी।
टूने कामन करके नी मैं प्यारा यार मनावांगी।
इश्क अंगीठी अरपंद तारे सूर्ज अग्न चढ़ावां मी॥
लासवां शोंह नूं गल अपने तद मैं नार कहावांगी।
टूने कामन करके नी मैं प्यारा यार मनावांगी॥
ना मैं व्याही ना मैं क्वारी बेटा गोद खिलावांगी।
बुल्हा लामकाफ दी पौंडी उत्ते वह के नाद बजावांगी।
टूने कामन करके नी मैं प्यारा यार मनावांगी॥

(पंजाबी काफी, बुल्लहा शाह)

उपासना और ज्ञान।

उपासना ऐसे है जैसे गुणनके उदाहरण सिद्ध करना और ज्ञान यह है कि बीज गणिततक पहुंचकर उस गुणनकी विधिका कारण आदि भी जान जाना। उपासना साधन है ज्ञान सिद्ध अवस्था। उपासनामें यत्नके साथ अन्दर बाहर ब्रह्म देखा जाता है। ज्ञान वह है जहां यत्नरहित स्वाभाविक अन्दर तो रोम रोमसे "अहं ब्रह्मास्मि"के ढोल और सब वृत्तियोंको दबा दे, और बाहर हर त्रिसरेणु "तत्त्वमसि"का दर्पण दिखाता हुआ भेद-भावनाको भगा दे। यह ज्ञान ही असली त्याग है—

त्यागः प्रपञ्च रूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्।
त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः।

जहां श्रुतिने त्यागका उपदेश वर्णन किया है "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" वहां त्यागका लक्षण इतना ही किया है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्॥
जो कुछ दीखे जगतमें सब ईश्वरमें ढांप।
करै चैन इस त्यागसे धन लालचसे कांप॥

ऊपर ऊपरके त्याग इस असली त्यागके साधन हैं। यह त्याग-रूपी ब्रह्मदृष्टि यत्नतः करना उपासना है।

अब यह त्यागरूपी उपासना भी और त्यागों या वृत्तियोंकी तरह होगी, करें वा न करें, किसीको पैसा दें या न दें—हमारी इच्छा पर है" जो ऐसा समझते हैं धोखेमें हैं। यह त्यागरूपी उपासना आवश्यक है, आवश्यक क्यों? कि और कहीं ठंढ पड़नेकी नहीं।

वृत्ति तबतक एकान्त नहीं हो सकती, जबतक मनमें कभी यह आशा रहे और कभी वह इच्छा। शान्त वह हो सकता है जिसे कोई कर्तव्य और आवश्यकता खींच घसीट न रही हो। अपने

आप तो इन वासनाओंसे पीछा छुटना ही नहीं, जब पल्ला छूटेगा, आप छुड़ाना पड़ेगा। इसलिये जीनेतककी आशाको भी त्यागकर मनको ब्रह्मानन्दमें डाल दो। एक दिन तो शरीरको जाना ही है, सदाके लिये पट्टा तो लिखवाकर लाये ही नहीं थे; आज हीसे समझ लो कि यह है नहीं और ब्रह्मानन्दके सागरमें शङ्कारहित होकर कूद पड़ो। आश्चर्य्य यह है कि जब हम इन कामनाओंको छोड़ही बैठते हैं, वह अपने आप पूरी होने लग पड़ती हैं।

गंगातीरे हिमगिरिशिला बद्धपद्मासनस्य।
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योग निद्रां गतस्य।
किंतैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः,
कण्डूयन्ते जरठ हरिणा श्रृङ्गमङ्गे मदीये।

जब दिलमें त्याग और ज्ञान भरता है और शान्त साक्षी बन कर विचारशक्ति आती है तो वही दुनिया जो मायाका परदा हो रही थी रामकी झांकियोंका लगातार प्रवाह बन जाती है! 'दर्शन दाता' कहला सकती है, एकरस अभिव्यञ्जकी हो जाती है। वह लोग जो भेदभाव और अभेदवादके शास्त्रार्थमें लीन हैं उनको झगड़ने दो। उस अवस्थाके लिये यह बुद्धिकी छानबीन भी अयुक्त नहीं, परन्तु जब बुद्धि (अर्थात् सूक्ष्म शरीर) के तलसे उतरकर कारण शरीर में ज्ञानभावका दीवा जलता है तो यह झगड़े तै होते हैं और जबतक मनुष्यके अन्तर हृदय (मानों सातवें परदे) में रामका डंका नहीं बजता तबतक उसे न उपासना ही रस देगी, न ज्ञान, न वेदकी संहिताका अर्थ आयेगा, न उपनिषद्का।

जैसे भूके भूक अनाज, तृपावन्त जल सेती काज।
जैसे कामी कामिनि प्यारी, वैसे नामे नाम मुरारी।

टेलीफोन द्वारा प्यारेने बातें कीं, टेलीफोन प्यारी लगने लगी। जब मोहन दूसरी जगह है टेलीफोनकी बड़ी कदर है। जब मोहन अपने घर आ गया, तो अब टेलीफोनसे क्या? वह मित्र, सम्बन्धी, राज, धन, दौलत सब टेलीफोन हैं, जिनके द्वारा राम हमसे बोलता था। जबतक राम नहीं मिला था, दिल कांपता था कि हाय! इन बिना कैसे सरेगी? वह प्यारा घर आ गया, आ मिला, अब तो हे मित्रगण! मुझको भले छोड़ दो, सम्बन्धीजनो! त्याग जाओ, धन दौलत! लुट जाओ, भाग जाओ, इज्जत सम्मान! बेशक पीठा दिखाओ, यहां बैठे क्या करते हो, राजाजी! निकाल दो अपने देशसे, घर रखो अपनी दुनिया।

राजा रूठे नगरी राखे अपनी।
मैं हर रूठे कहां जाना?
अब दिलवर घर आया है, नैनोंका फर्श बिछाऊंगी।
गुण औगुणपर धर चिन्गारी, यह मैं धूप धुकाऊंगी।
प्राणोंकी मैं सेज करूंगी, हरिको गले लगाऊंगी।

शिवोहम् भाव (अद्वैत दृष्टि) बिना सम्यक् शुद्धि नहीं होगी।

"शिवोहम्" तो सभी करते हैं, क्या भेदवादी क्या अभेदवादी; क्या भक्त, क्या कर्मकाण्डी; क्या हिन्दू क्या और कोई। सबही अपने दिलके भीतरसे अपने आपको बड़ेसे बड़ा मानते हैं, और साबित करते हैं। वह भेदवादी भक्त जो अभी मन्दिरमें देवके सामने अपने तईं 'नीच-पापी-अधम-मूर्ख' कहते-कहते थकता नहीं था, जब बाहर बाजारमें निकला तो उसे कोई "अरे ओ नीच!

कहकर पुकारे तो सही, फिर देखो तमाशा, कचहरियोंमें क्या गति होती है।

अन्दरका 'शिवोहम्' कभी मर ही नहीं सकता। मरे क्योंकर; सांचको आंच कहां? पर हां! अपने तईं देहादि रखकर जो शिवोहम्का मुलम्मा ऊपर चढ़ाता है यह तो पौंड्रककी नाईं झूठा विष्णु बनाना है। इस प्रकार तो 'वासुदेवोहम्' सब दुनिया अहंकारकी बोली द्वारा बोल रही है। यह तो मैंले ताम्रके पात्रमें पायस पकाना है और ज़हरसे मर जाना है। वेदान्तका उपदेश यह कि क्षीर तो पिया जाय, पर मैंले ताम्र पात्रमें नहीं। देहाभिमान अन्दर और शिवोहम्का ऊपर ऊपरसे मुलम्मा तो ही नहीं, बल्कि शिवोहम् अन्दर हो और अन्दरसे अग्निकी तरह भड़क कर देहाभिमानको जला दे। यह हो गया तो देहाभिमान, कृपणता, भय-शोकको ठौर कहां? इस भेदको (नहीं अभेदको) जिसने जाना, निधड़क हो गया, उदारता मूर्तिमान बन गया, बल-शक्ति और तेजका दरिया (नद) हो निकला।

कोई भी बल हो कहांसे आता है? उस उदारतासे जिसमें शरीर और प्राणकी बलि देनेको हम तैयार हों, सिरको हथेलीपर लिये चलें, देखो यारो! जब "ज्योतिषां ज्योतिषः" अपने आपको पाया तो सिरसे गुज़र जाना रूपी सूरमापन स्वतः कैसे न आ जायगा?

अब ज़रा ध्यान देकर सुनना, मैं तुमसे कुछ मांगता तो नहीं?

भूत कहे, अवधूत कहे, रजपूत कहे, जुलहा कहे कोऊ।
काहूकी बेटीसे बेटा न ब्याहूं, काहूकी जात बिगाड़ न सोऊ।
मांगके खाऊं, स्मशानमें सोऊं,लेनेकी एक न देनेकी दोऊ।

किसीके टके देने नहीं, किसीसे कौड़ी लेनी नहीं, लाग-लपेटसे क्या? कड़ुवा मानो, सचही कहूंगा, पर्वतके शिखरसे राम पुकारकर सुनाता है:—

संसारको सत्य मानकर उसमें कूदते हो, फूसकी आगमें पच-पच मरते हो, यह उग्र तपस्या क्यों ? इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होगा। देहाभिमानके कीचड़में अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूपको भूलकर फंसते हो, दलदलमें धंसते हो, गल जाओगे, ब्रह्मको बिसारकर दुःखोंको बुलाते हो, सिरपर गोले बरसाते हो और गुल (पुष्प)! गल जाओगे। सत्यको जवाब देकर मिथ्या नाम रूपमें क्यों धक्के खाते हो ? जिनको श्वेत माखनका पेड़ा समझते हो, वह तो चूने (कलई) के गोले हैं। खाओ तो सही, फट जायंगी अन्तड़ियां, झूठ बोलनेवालेका बेड़ा गरक! मैं सच कहता हूं, दुनियाकी चीजें धोका हैं। होशमें आओ, ब्रह्म-ही-ब्रह्म सत्य है।

ज्येष्ठ आषाढ़की दोपहरके वक्त भाड़की तरह तपे हुए मरुस्थलमें मंकि मुनि जब अति व्याकुल हो रहा था, और उसने पासके एक ग्राममें जाकर आराम चाहा, उस समय वशिष्ठ भगवान्‌के दर्शन हुए। वशिष्ठ जी कहते हैं, बेशक इस गरमीमें हज़ार बार जल मर, पर वहां मत जा, जहां तनुके तनूरमें पड़ेगा। यहांपर तो शरीर ही जलता है, वहां अविद्याके तापसे सारेका सारा सड़ेगा।

वरमन्धगुहाहित्वं शिलान्तः कीटता वरम्।
वरं मरौ पंगुमृगो न ग्राम्यजनसंगमः॥

आप बीती कहूं कि जग बीती ?

जब कभी भूलसे किसी सांसारिक वस्तुमें इष्टता वा अनिष्टता भाव जमाता हूं, हानि-लाभ, छुटाई-बड़ाईमें दिल टिकाता हूं, तन्दुरुस्ती (देहकी आरोग्यता) को बड़ी बात गरदानता हूं, किसी पुरुषको अपना वा पराया ठानता हूं, कोई चीज़, भावी व वर्तमान, सत्य मानता हूं, अर्थात् शुद्ध स्वरूपको

भूलकर, शरीरमें जनकर भेददृष्टिसे देखता और विचार करता हूं, तो अवश्यमेव तीन तापोंमें कोई न कोई आन घेरता है। मेरी दृष्टि थोड़ी गिरे तो ताप भी थोड़ा होता है, बहुत गिरे तो ताप भी बहुत। इस क्षुद्र दृष्टि और तुच्छ भावनाका फल खेद, दुःख मिले बिना कभी नहीं रहता। और जब देहादि स्वप्नको परे भगा भेद-भावनाको उड़ा आत्मदृष्टि खोलता हूं, तो संसारके तत्त्व ऐसे हो जाते हैं, जैसे किसीके अपने हाथ-पैर, जिस तरह चाहे हिला लें। प्रकृतिकी चाल मेरी आंखोंकी कटाक्ष हो जाती है। यही कानून और सब लोगोंके दुःख-सुख लानेमें भी राज करता है, इसको न जानकर लोग मरते हैं। यह कानून कहीं सच्चा तू न समझ लेना, अनाड़ीका काता हुआ यह वह लोहेका रस्सा है जिससे इन्द्र और सूर्य्य भी बँधे पड़े हैं। संसार-समुद्रमें यह वह एक पत्थरकी चट्टान है, जिसको न देख-कर महाराजे, पण्डित, देव और दानव अपने जहाजों (पोतों) को तोड़ बैठते हैं। वंशोंके वंश, कौमोंकी कौमें, मुल्कोंके मुल्क इस कानूनको भुलाकर मिट्टीमें मिल चुके हैं।

अजगरने समझा कि कृष्णको खा ही लूंगा और पचा जाऊंगा, लो खा गया, पर पेटके अन्दर चलीं फटारियां। खण्ड-मण्ड होकर आतिशबाजीके अनारकी तरह अजगर उड़ गया, और कृष्ण वैसे-का वैसा शेष रहा। क्या तुम इस सत्यरूपी कानूनको खा सकते हो, दबा सकते हो, छिपा सकते हो ? इस सत्यको किसीका लिहाज़ नहीं, और तो और खुद कृष्णके कुलवाले जब सत्यको मखोलमें उड़ाने लगे, और अपनी तरफसे मानों इसे रगड़-रगड़कर रेतमें मिला भी गये तो यह सत्य मटियामेट होकर भी फिर उगा, और क्या कृष्ण और क्या यादव सबके सबको हड़प कर गया, द्वारकापर पानी फिर गया। भाई ! मुर्देको उठाकर जो चिल्लाया करते हो

"राम राम सत्य है"

आज पहले ही समझ जाओ, अभी समझ लो तो मरोगे ही नहीं। मरनेके वक्त गीता तुम्हारे किस काम आयेगी? अपनी जिन्दगीको ही भगवत्‌की गीता बना दो। मरते वक्त दीवा (दीपक) तुम्हें क्या उजाला करेगा, हृदयमें हरिज्ञान प्रदीप अभी जला दो।

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते।
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः॥
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः।
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

पतितः पशुरपि कूपे निःसर्तुं चरणचालनं कुरुते।
धिक् त्वा चित्त भवाब्धेरिच्छामपि नो बिभर्षि निःसर्तुम्॥

एक जुलाहा भूखों मर गया, उसकी माँ मुरदेके मुंह और पायुको पैसेका घी लगाकर सबको दिखाती थी, देख लो! मेरा पुत्र भूखा नहीं मरा, घी खाता और घी त्यागता गया है। प्यारे! उधारी मुक्ति तो जुलाहेका घी है। रोकड़ मुक्ति (नक़द निजात) जीवन-मुक्ति, जब मिल सकती है, तो क्यों न लेनी?

सच्चा उपासक

भाई! सच्ची कहें, उपासक और भक्त होनेकी पदवी हमको तो नसीब नहीं। हमने तो सच्चा उपासक सारी दुनियांमें एक ही देखा है। बाकी भक्तों, ऋषियों, मुनियों, पीरों, पैगम्बरोंका "प्रेममय उपासक" कहलाना एक कहने हीकी बात है। वह सच्चा आशिक और उपासक कौन है? जिसको लोग उपास्यदेव कहते हैं। क्योंकर? प्रेमी जार (यार) की तरह छिप-छिपकर

छेड़ता है, शनैः-शनैः वृत्तिकी कन्नी (चित्तका आंचल) खींचता है, अनेक प्रकारके भेष बदलकर, रंग-रूप धारण करके, स्वांग भरके परदोंकी ओटमें नयनोंकी चोट मार जाता है, जब मन अनात्मपदार्थोंमें कहीं लग जाता है तो, हा, फिर उसके मान करने (रूठनेका) क्या कहना! भृकुटी कुटिल किये कैसा-कैसा कोप दिखाता है! जब वृत्ति-मार्गमें कहीं रुक जाय तो चुटकियां भरता है। दम तो लेने नहीं देता, आराम तो नामको भी और कहीं नहीं मिलने पाता, सिवाय एक मात्र उस रामकी निष्काम शय्याके।

हे प्यारे! अब आशिक़ होकर रूठना (मचलना) कैसा? अब रस चखाकर नटते हो? हे प्राणनाथ! इधर देखो! वह दुष्ट शिशुपाल आ पड़ा, छीनकर ले चला तुम्हारी रुक्मिणीको। कुछ रिस, शर्म भी है? यह तो वक्त मान करनेका नहीं, आओ आओ।

त्वमसि मम भूषणं,त्वमसि मम जीवनं,त्वमसि मम जलधिरत्नं
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनस्तत्र मम हृदयमतियत्नं

सूर्य्यको बारह महीने तेज प्रकाश दे दिया मुफ़्तमें। हमको आठोंपहर निजानन्दमें देते कङ्गाल तो नहीं हो चले।

हे प्रभो! अब तो मुझसे दो-दो बातें नहीं निभ सकतीं। खाने-पीने, कपड़े-कुटियाका भी ख्याल रखूं और दुलारेका भी मुख देखूं। चूल्हेमें पड़े पहनना, खाना-पीना, जीना-मरना, इनसे मेरा निर्वाह होता है? मेरी तो मधुकरी हो तो तुम, कामली हो तो तुम, कुटी हो तो तुम, ओषधि हो तो तुम, शरीर हो तो तुम, आत्मा हो तो तुम। शरीर आदिको चाहते हो तो पड़े रक्खो। अकर्त्ता बन रहे हो, निकम्मे बैठे क्या करते हो? सेवा करो।

आंखें लगाके तुझसे न पलकें हिलायेंगे।
देखेंगे खेल हम, तुम्हें आगे नचायेंगे॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ॥ यजुः ॥
तुम्हरी खातिर है प्रभो ! यह मन था तन बीच ॥

ले लो अपनी चीज़। वारकर फ़ेंक दो अपने "बेनाम" पर। थाली भर-भरकर हीरे, जवाहिरात, तुमपर वार वारकर फेंके गये, जिनको लोग तारे नक्षत्र ग्रह चांद सूर्य्य और पृथिवियां कहते हैं। लूट लो ज्योतिषियो, लूट लो तत्वविज्ञानियो, लूट लो सौदागरो, राजाओ, लूट लो। पर हाय! मार डालो, तोभी मैं तो यह माल नहीं लूंगा। डोलोपर वार वारकर फेंका हुआ टका रुपया लूटना कोई और लोगोंका काम है। मैं तो वही लूंगा, वही! परदेवाला, दुलारा, प्यारा।

उपासनाके मन्त्र

तासीर उस उपासनाकी होती है जो दिलसे निकले। गलेके ऊपर ऊपरसे निकले हुए उपासनाके वाक्य तो मानों मखौलबाज़ी है और परमेश्वरको झुठलाना है। जैसी चित्तकी अवस्था होगी, सच्ची उपासनाकी वैसी सूरत होगी।

(१) विद्यार्थीकी प्रार्थना

(क) ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते निरमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥
इहैवाभिव तनूभे आर्त्नी इवज्यया।
वाचस्पतिर्नियच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि ॥

इसमें वाच (वाणी) के पति (वाचस्पति) रूप ब्रह्मका ध्यान है। जब लोहा अग्निमें पड़ा रहे, अग्निके गुण उसमें आ जाते हैं, इस तरह जब बुद्धि वाच् (वा मन) के पति सर्वव्यापी चैतन्यमें कुछ काल अभेद रहे, तो उसमें विचित्र शक्ति कैसे न आ जायगी!

कोई भी मन्त्र हो, उनको खाली पढ़ या गाही नहीं छोड़ना, किन्तु पढ़कर उनके भावार्थमें मनको लीन और शान्त होने देना चाहिए।

(ख) यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

भावार्थ—क्या जाग्रत, क्या स्वप्न, क्या सुषुप्ति—तीनों दशामें मेरा मन किसी और विचारकी तरफ न जाने पाये, सिवाय शिवरूप आत्मचिन्तनके, चलते फिरते बैठे खड़े मेरा शिवरूप सत्य स्वरूप आत्माके सिवाय और कोई चिन्तन न करने पाये। इसी प्रकार शु० यजुः अ० ३४ के अगले पांच मन्त्र भी यही भाव प्रगट करते हैं।

(ग) ॐ भूर्भुवःस्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यहांपर पहिले तो यह देखना है, कि 'धीमहि' और नः दोनों बहुवचन हैं। एकान्तमें अकेले तो इस ब्रह्म गायत्रीका ध्यान है और "हम ध्यान करते हैं" "हमारी बुद्धियां" ऐसा क्यों! "मैं ध्यान करता हूं" और "मेरी बुद्धि" क्यों नहीं लिखा? इसमें वेदकी आज्ञा यूं है, कि प्रथम तो देहाभिमान रूपी स्वार्थ दृष्टि और परिच्छिन्नताओंको परित्याग करना है। सब देशके लोगोंको अपनास्वरूप जानकर, सब शरीरोंको अपना शरीर

मानकर, सबके साथ एक होकर अभेद बुद्धिके साथ यह ध्यान करना है—

"वह सवितृदेव जो हमारी बुद्धियोंको चलाता है, उसके प्रिय (पूज्य) तेज (स्वरूप) का हम ध्यान करते हैं।" "प्रचोदयात्"में महीधर और सायणाचार्यने व्यत्यय माना है और वह ठीक भी है। सूर्य्य रूप सवितृदेवको हमारी बुद्धियोंका प्रेरक माना है। वही जो सूर्य्यको प्रकाश करता है, वही बुद्धियोंका प्रकाशक है। वही आत्मा है।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥ (यजु० सं०)

उसका ध्यान करनेसे क्या लाभ!

बड़ी आपदा आन पड़ी और सन्ध्या करते समय परमेश्वरको भुलाया नहीं, किन्तु सचमुच वारवार देह-दृष्टिको छोड़कर जो यह ध्यान किया कि "मैं तो सूर्य्यके प्रिय तेजवाला हूं। मेरा तो वही धाम है," तो कहिये, चिन्ता जल न जायगी! प्रतिदिन तीन वक्त, या दो वक्त या एक कालही सही, सच्चे भावके साथ जो इस तत्त्वमें लीन हुए कि "इन बुद्धियोंका प्रेरक आत्मदेव मैं तो वही हूं जिसका तेज सूर्य्य चन्द्रमामें चमक रहा है," तो कहिये कौनसा अन्धेरा खड़ा रह सकता है? विद्या पढ़ रहे हैं या कोई बड़ा कार्य्य हाथमें है, और हर दिन एकान्तमें बैठ बैठ और सब तरफसे वृत्तिको खींच, तेजके पुञ्जमें अभेद भावना करते हैं, तो यारो! दुहाई है! अगर यश और कीर्ति खिंचकर तुम्हारे आगे नृत्य न पड़ो करे! क्या खलु क्रतुमयः पुरुषः श्रुतिने झूठही कह दिया था?

(२) जब चित्त संसारमें डूब जाये, कानून कहानी टूट जाये, पाप कर्म हो जाये, आत्मदेव भूल जाये तब आंसू भरे नयन, जोड़े हुए हाथ, रगड़ते हुए घुटने, माटीमें घिसता हुआ माथा, जलता हुआ दिल, यदि इस प्रकारकी उपासना करे, तो वह कौनसा पाप है, जो धुल न जायगा:—

मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
यदेमि प्रस्फुरन्निव दतिर्नध्मातोअद्रिवः । मृडा सुक्षत्र मृडय ॥
क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमाशुचे । मृडा सुक्षत्र मृडय ।
अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् मृडा सुक्षत्रमृडय ॥
यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याः३ श्चरामसि ।
अचित्तीयत्तवधर्मा युयोपिममानस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥

(ऋक्० मं० ७ सू० ८९)

सोनेका गढ़ छोड़कर, धसूं न कांटों बीच ।
हीरे मोती फेंककर, लेऊं न माटी-कीच ॥

अब दया ! हे राम ! अब दया ! मैं भूला, मैं उड़ा, मैं पड़ा, मैं गिरा, मैं मरा । अब दया ! हे राम ! अब दया !

(३) जबतक देहमें प्रीति और किसी प्रकारकी कामना बनी रहती है, तबतक तो भेद-उपासना ही दिलसे निकलेगी । प्रेम-अनुराग जब बहुत बढ़ेगा तो उपासनाकी यह शकल हो जायगी ।

तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा । स मा भग प्रविश स्वाहा ।
तस्मिन्सहस्रशाखे । नि भगाहं त्वयि मृजे स्वाहा । (तैत्ति०)

यह भेद उपासना उच्चतम श्रेणीको पहुंच जाय तो इसका ढंग कुछ यूं होगा ।

गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे । प्रियाणां त्वा
प्रियपति ँ हवामहे । निधीनांत्वा निधिपति ँ हवामहे ।
वसो मम, आहमजानि गर्भध मा त्वमजासि गर्भधम् ॥

(यजु० संहिता)

है गौहर यह तकरार-इ-उलफत तो तुझसे।
कि इतनी यह हो मेरी किस्मत तो तुझसे॥
मेरे जिस्मो-जांमें हो हरकत तो तुझसे।
उड़े मा, मनीकी यह शिरकत तो तुझसे॥
मिले सदका होनेकी इज्जत तो तुझसे।
सदा एक रहनेकी लज्जत तो तुझसे॥
रफीकोंमें गर है मुरव्वत तो तुझसे।
अजीजोंमें गर है मुहब्बत तो तुझसे॥
खजानोंमें जो कुछ है दौलत तो तुझसे।
अमीरोंमें है जाहो-सौलत तो तुझसे॥
हकीमोंमें है इलमो-हिकमत तो तुझसे।
है रौनक जहां या है बर्कत तो तुझसे॥

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥

(४) पर हां, जो लोग सदाके लिए निचले दर्जेकी उपासना-का पेशा बना लेते हैं, वह अनर्थ करते हैं, क्योंकि अगर कोई प्रार्थना एक दफा भी सच्चे दिलसे निकली होती तो कोई वजह नहीं कि चित्तकी अवस्था बदल न गई होती और दिलका दरजा बढ़ न गया होता। यदि मन दूसरी क्लास (दरजे) में चढ़ गया, तो फिर पहिली क्लासमें रोना क्यों? यदि नहीं चढ़ा, तो वह प्रार्थना झूठ बकवास थी, अब झूठी बकबकको पेशा बनाया चाहता है। उपासनाका परम प्रयोजन यह था कि शरीरके स्नेहसे चित्त मुड़े और आत्मा संग जुड़े। सच्चे उपासकको जब शरीरसे हुआ अपराध याद आता है तो वह "सांसारिक अपने

आप' से भागना चाहता है। हरिकी शरणमें आता है और आत्मासे तदाकारता पाता है। ऐसा ध्यान एक दफा नहीं, दो दफा भी हो जाय तो फायदा है, कोई डर नहीं। परन्तु जो लोग "पापोहं पाप कर्माहं पापात्मा पाप सम्भवः" को प्रति दिन पड़े ही रटते हैं, उनको इस प्रकारकी आवृत्ति न केवल देहसे सम्बन्ध पक्का देती है, बल्कि पाप-संस्कार मनमें दृढ़ जमा देती है।

शुद्ध अन्तःकरण और सच्चे हृदयवालोंसे भेद-उपासना कभी हो ही न सकेगी, जैसे एम० ए० क्लासके विद्यार्थीका जी मिडिल क्लासवालोंकी पुस्तकोंमें कभी लग ही नहीं सकता।

ज्ञानी

अब ज़रा चौकन्ने होकर सुननेका समय है। लो, अब फिर फोड़ते हैं भांडा। निर्भयता, जीवन्मुक्ति, साम्राज्य, स्वराज्य और किसीको कभी भी नहीं नसीब होते, सिवाय उस पुरुषके जो अपने आपको संशयरहित होकर पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द नित्य मुक्त जानता है, जो सर्वत्र अपने ही स्वरूपको देखता है। क्यों हिलेगा उसका दिल जो एक आत्मदेव बिना कुछ और देखता ही नहीं! बड़ा भयानक, घोर शब्द हुआ; पर सिंह क्यों डरे, वह तो सिंहकी अपनी ही गर्ज थी! लोहा तलवारके जौहरोंसे क्या भय माने, वह तो उसीके तेज चमत्कार हैं। अग्नि अपनी ज्वालासे आप क्या संतप्त हो! तारे टूट पड़ें, समुद्र जल उठे, हिमालय उड़ता फिरे, सूर्य्य मारे ठंडके बर्फका गोला बन जाय, आत्मदर्शी ज्ञानवानको क्या हैरानी हो सकेगी, जिसकी आज्ञासे कुछ भी बाहर नहीं हो सकता!

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

अपि शीतरुचावर्के सुतीक्ष्णे चेन्दुमण्डले।

अप्यधः प्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विस्मयी ॥
प्रलयस्यापि हुंकारैर्महाचलविचालकैः ।
विक्षोभं नैति तस्यात्मा स महात्मेति कथ्यते ॥
भेदभावना दिलसे छोड़ । निर्भय बैठा मूंछ मरोड़ ॥

सूर्य्य उसीके हुकुमसे जलता है, इन्द्र उसीका पानी भरता है, पवन उसीका दून है, उसीके आगे दरिया रेतमें माथा रगड़ते हैं, राजे-महराजे, देवी-देवता, वेद-किताब जो कुछ भी है एक आत्मदर्शीका संकल्पमात्र है। तीनों भुवन और चारों खानि जङ्गल है जिनमें रौनक केवल एक चैतन्य पुरुषरूप ज्ञानवान्‌की त्रिलोकी लालटेन है, जिसमें ज्योतिरूप ज्ञानवान् है। चौदहलोक एक शरीर है, प्राण जिसका ज्ञानवान् है। बस वही सत् है और कुछ भी नहीं। पृथ्वी अन्न पैदा करती है कि कभी ब्रह्मनिष्ठके चरण पड़ें। मृतु बदलते हैं कि कभी आत्मस्वरूप महात्माके दर्शन नसीब हों। "सुरतिय, नरतिय, नागतिय," इन सबको उदरमें बोझ उठाने पड़े, वेदना सहनी पड़ी, उस एक अज, अमररूप ज्ञानीको प्रकट देखनेके लिये। दुनियाके राज्य काज उसके लिए थे, वह आया तो राज्यकार्जोंकी ड्यूटी (कर्तव्य) पूरी हुई। घर बन रहे थे, कपड़े बुने और पहने जा रहे थे, ब्रह्मनिष्ठकी पधरावनीके लिए। वह आया, सब परिश्रम सफल हो गये। रेलें चलती थीं, पोतें बहती थीं, कभी ब्रह्मनिष्ठतक पहुंचनेके लिए। युद्ध होते थे, लोग मरते थे, कभी जीवन्मुक्तकी झांकीके लिए। नाना विधि विकास एक ज्ञानवान् फलकी खातिर था। उपासना, प्रार्थना, भक्ति, नाक रगड़ना, आठ आठ आंसू रोना, प्रेमकी जरदी (पीलापन) कबतक थी, जबतक ज्ञानकी लाली नहीं आयी।

ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति ॥

प्रसंख्यान

अभेद उपासनाकी विधि—मनन निदिध्यासन।

शास्त्रोंमेंसे उन वाक्योंको चुन लिया, जो मनमें खुवते, चित्तमें चुभते हैं और उनको एकान्तमें बैठकर नीचे दिखाई विधिसे वरता। जैसे शङ्करके आत्मपञ्चक स्तोत्रको ले लिया:—

नाहं देहो नेंद्रियाण्यंतरंगम्।
नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः॥
दारापत्यक्षेत्रविचादि दूरः।
साक्षी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम्॥

भावार्थः—नहीं देह इन्द्रिय न अन्तःकरण।
नहीं बुद्ध्यहंकार वा प्राण मन॥
नहीं क्षेत्र, घर वार, नारी न धन।
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन।

चौथे पादको दिलमें वारम्वार दुहराया, और नीचे दिखाये अनुसार विचारपूर्वक दोहराते गये, यहांतक कि मन शिथिल हो जाये।

निस्सन्देह ऐसी तहकीकात (मीमांसा) जिसमें विकल्प कभी स्वप्नमें भी युक्त नहीं, मैं देह आदि नहीं, फिर देहभ्रमको अपनेमें क्यों आने दूंगा? देह अभिमान करना युक्ति दलीलको उल्लङ्घन करना है, महा मूर्खता, बेअकली है।

मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन॥

निस्सन्देह वेद, वेदान्तका अन्तिम निष्कर्ष और कुछ नहीं। वेद और सनशास्त्र मुझको देह आदिसे भिन्न बताते हैं, मेरा अपने तईं देह आदि ठानना घोर नास्तिक बनाना है, यह अपराध मैं क्यों करूं?

मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥

गुरुजीने मुझे अपने साक्षात्कारके बलसे कहा, "मैं देह आदि नहीं", फिर मेरा देह अभिमान रखना पूज्यपाद गुरुजीके मुंह और जबानपर जूते मारना है। हाय! यह उपद्रव मैं क्यों करूं।

मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥

शरीर आदिकी पीड़ा, सम्बन्ध, लोगोंकी ईर्षा, द्वेष, सेवा, सम्मानसे मुझे क्या? कोई बुरा कहे, कोई भला कहे, मैं एक नहीं मानूंगा। जो आप भूले हुए हैं, उनका क्या भरोसा? केवल शास्त्र और प्रमाण ही माननीय हैं, मुझमें कोई पीड़ा नहीं, कोई शोक नहीं, ईर्षा नहीं, राग नहीं, जन्म नहीं, मरण नहीं, देह नहीं, मन नहीं।

मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥
मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, चिदानन्द घन ॥

मां छोटे बच्चेको आम्रफल खेलनेको देती है। बच्चा दस्तूरके मुवाफिक हाथसे पकड़कर मुंहके पास ले जाता है; और लगता है चूसने। चूसते चूसते आखिर वह फल फूट पड़ा और बच्चेके हाथपर, मुंहपर, कपड़ोंपर रस ही रस फैल गया। अब तो न कपड़े याद हैं न मां याद है, न हाथ मुंहका ही होश है, रस रूप हो रहा है। इसी तरह श्रुतिमाताका दिया हुआ यह पका हुआ महावाक्य रूपी अमर फल एकान्तमें अन्तःकरणके साथ दुहराते-दुहराते दुहराते दुहराते-आखिर फूट पड़ता है और परमानन्द समाधि आ जाती है।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ब्रह्मसूत्र० ४-१-१

जब सर्वदेश अपने आत्मामें पाने लगे, तो परोक्ष क्या रहा? और स्थान-सम्बन्धी चिन्ता क्योंकर उठे? जब सर्वकालमें अपने तईं देखा, तो कल परसों आदिकी फ़िकर कहां रही? जब सर्व मनुष्य और पदार्थ सचमुच अपना ही रूप जाने गये तो यह धड़का कैसे हो कि हा! जाने अमुक पुरुष मुझे क्या कहता होगा! जब कार्य्य-कारण-सत्ता आप हुए, तो चित्तवृत्तियोंका बेड़ा कैसे न डूबे? मन पारा खाये हुए चूहेकी तरह हिल्ने डुल्नेसे रह जायगा—मानों चित्तके बच्चे हो मर गये। सहज समाधि तो स्वयं होनी ही होगी।

क्या सोचे, क्या समझे राम? तीन कालका वां क्या काम?
क्या सोचे, क्या समझे राम? तीन लोक नहिं उपजा धाम।
नित्य तृप्त सुख सागर नाम, क्या सोचे क्या समझे राम?

इस सिरसे गुज़र जानेमें जो स्वाद, शान्ति और शक्ति आते हैं, वही जानता है, जो इस रसको चखता है। राजा जनकने यह अमृत पीकर अपना अनुभव यूं वर्णन किया हैः—

नाहमात्मार्थमिच्छामि गन्धान्घ्राण गतानपि।
तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थमिच्छामि रसानास्येऽपि वर्त्ततः।
आपो मे निर्जितास्तस्माद्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थमिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुषः।
तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥
नाहमात्मार्थमिच्छामि स्पर्शान् त्वचि गताश्चये।
तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा॥

नाहमात्मार्थमिच्छामि शब्दान् श्रोत्रगतानपि।
तस्मान्मे निर्जिताः शब्दा वशे तिष्ठन्ति सर्वदा॥
नाहमात्मार्थमिच्छामि मनो नित्यं मनोऽन्तरे।
मनो मे निर्जितं तस्माद्वशे तिष्ठति सर्वदा॥
(महाभारत)

उर्दू अनुवाद—

अपने मजेकी खातिर गुल छोड़ही दिये जब।
रूए जमींके गुलशन मेरे ही बन गये सब॥
जितने जुबांके रस थे कुल तर्क कर दिये जब।
बस जायके जहांके मेरे ही बन गये सब॥
खुदके लिए जो मुझसे दीदोंकी दीद छूटी।
खुद हुस्नके तमाशे मेरे ही बन गये सब॥
अपने लिए जो छोड़ी ख्वाहिश हवाखुरीकी।
बादे-सबाके झोंके मेरे ही बन गये सब॥
निजकी गरजको छोड़ा सुननेकी आरजूको।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गये सब॥
जब बेहतरीके अपनी फिक्र-ओ-ख्याल छूटे।
फिक्र-ओ-ख्याले रंगीं मेरे ही बन गये सब॥
आहा! अजब तमाशा! मेरा नहीं है कुछ भी।
दावा नहीं जरा भी इस जिस्म-ओ-इसम परही॥
ये दस्त-ओ-पा हैं सबके आंखें यह हैं तो सबकी।
दुनियाके जिस्म लेकिन मेरे ही बन गये सब॥

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं, कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयन्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यतामा ॥
अहं भूमिमददामार्या याहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनय नावशान्त मम देवासो अनुकेतमायन् ॥

प्रणव (ॐ)में इन मन्त्रोंके अर्थका रङ्ग भरकर, अर्थात् 'ॐ' को महावाक्य (ब्रह्मास्मि) का अर्थ देकर जपना, गाना, श्वासमें भरना, चलते-फिरते चितवनमें रखना, ब्रह्म-साक्षात्कारका बहुत बड़ा साधन है ।

एक स्त्री (वाक्) अपने स्वरूपको जानकर यूं गाती है:—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगं ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३यजमानाय सुन्वते ॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति,
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उ पक्षियन्ति,
श्रुधिश्रुतः श्रद्धिवं ते वदामि ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि,
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि,
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि,
ब्रह्म द्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणो-
म्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ।
अहं सुवे पितरमस्य मूर्ध-
न्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे ॥
ततो वितिष्ठे भुवनानि विश्वा,
तामूद्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥
अहमेव वात इव प्र-
वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा
परो दिवा पर एना पृथिवी,
एतावती महिना संबभूव ॥

ऋ० वे० मं० १० सूक्त १२५

गुल खिलते हैं, गाते हैं रो रो बुल बुल।
क्या हंसते हैं नाले नदियां ॥
रंगे-शफ़क़ घुलता है, बादे-सबा चलती है।
गिरता है छम छम बारां ॥
मुझमें ! मुझमें ! मुझमें !
करते हैं अज्जम जग मग, जलता सूरज धक धक।
सजते हैं बाग-उ-बियाबां ॥
बसते हैं लन्दन पैरिस, पुजते हैं काशी मक्का।
बनते हैं जिन्नत-उ-रिजवां ॥

मुझमें ! मुझमें ! मुझमें !
उड़ती हैं रेलें फर फर, बहती हैं बोटें झर झर
आती हैं आंधी सर सर॥
लड़ती हैं फौजें मर मर, फिरते हैं योगी दर दर
होती है पूजा हर हर॥
मुझमें ! मुझमें ! मुझमें !
चरखका रङ्ग रसीला, नीला नीला।
हर तरफ दमकता है॥
कैलास झलकता है, बहर ढलकता है।
चांद चमकता है॥
मुझमें ! मुझमें ! मुझमें !
सब वेद और दर्शन सब मजहब।
कुरान अञ्जील और त्रिपिटका॥
बुद्ध, शंकर, ईसा और अहमद।
था रहना सहना इन सबका॥
मुझमें ! मुझमें ! मुझमें !
थे कपिल, कणाद, और अफलातूं।
इस्पन्सर, केन्ट और हैमिल्टन।
श्रीराम, युधिष्ठिर, इसकन्दर।
विक्रम, कैसर, लिङ्कन, अकबर॥
मुझमें ! मुझमें ! मुझमें !
हूं आगे पीछे, ऊपर नीचे।
जाहर बातन में ही में॥

माशूक और आशक, शाहर मजमूं।
बुल बुल गुलशन, मैं ही मैं॥

इन्द्र (राजा) के आनन्दका समुद्र यूं गर्जता है :—

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
प्रवाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
उपमा मतिरास्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
अहं त्वष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
नहि मे अक्षिपच्चनाच्छांत्सुः पञ्चकृष्टयः।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
अभिद्यां महिना, भुवमभी३ मां पृथिवीं महीम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
ओषमित्पृथिवी महं जंघनानीह वेह वा।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥
दिवि मे अन्यः पक्षो ३ धो अन्यमचीकृषम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
गृहोयाम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
ऋ० मण्डल १० सू० ११६

पीता हूँ नूर हरदम, जाम-इ सरूरपै हम ।
है आसमां पयाला, वह शराब-इ-नूरवाला ॥
है जीमें अपने आता, दूं जो है जिसको भाता ।
हाथी गुलाम घोड़े, जेवर जमीन जोड़े ॥
ले जो है जिसको भाता, मांगे बगैर दाता ।
पीता हूँ नूर हरदम, जाम-इ-सरूरपै हम ॥
हर कौमकी दुआयें, हर मतकी इल्तजायें ।
आती हैं पास मेरे, क्या देर, क्या सबेरे ॥
जैसे अड़ाती गायें, जङ्गलसे घरको आयें ।
पीता हूँ नूर हरदम, जाम-इ-सरूर पै-हम ॥
सब ख्वाहिशें नगारें, गुण, कर्म, औ मुरादें ।
हाथोंमें हूँ फिराता, मेमार जैसे ईंटें ॥
हाथोंमें हूँ घुमाता, दुनिया हूं यूँ बनाता ।
पीता हूँ नूर हरदम, जाम-इ-सरूर पै-हम ॥

दुनियाके सब बखेड़े, झगड़े फसाद झेड़े।
दिलमें नहीं रह़कते, न निगहको बदल सकते ॥
गोया गुलाल हैं यह, सुर्मा मिसाल हैं यह।
पीता हूँ नूर हरदम, जाम-इ-सरूर पै हम ॥
नेचरके लाज सारे, अहकाम हैं हमारे।
क्या मेहर क्या सितारे, हैं मानते इशारे ॥
ह दस्त-ओ-पा हर इकके, मरजी पै जैसे चलते।
पीता हूँ नूर हरदम, जाम-इ-सरूर पै-हम ॥
कशिशे सिकलकी कुदरत, मेरी है मेहरो उलफत।
हैं निगाह-इ-त्तेज मेरी, इक नूरकी अन्धेरी ॥
बिजली, शफ़क़, अंगारे, सीनेके हैं शरारे।
पीता हूँ नूर हरदम, जाम-इ-सरूर पै-हम ॥
मैं खेलता हूँ होली, दुनिया है गेंद गोली।
ख्वाह इस तरफको फेंकूँ, ख्वाह उस तरफ चलादूँ ॥
पीता हूँ जाम हरदम, नाचूँ मुदाम थम थम।
दिन रात हैं तरन्नम, हूँ शाह-इ-राम बेगम ॥
किंकरोमि क्व गच्छामि किंगृह्णामि त्यजामि किम्
आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा
सबाह्याभ्यन्तरे देहे ह्यधऊर्ध्वं च दिक्षु च।
इत आत्मा ततेह्यात्मा नास्त्यनात्ममयं जगत् ॥
न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मयि।
किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं संविन्मयं ततम् ॥
स्फारब्रह्मामलाम्भोधिफेनाः सर्वेकुलाचला।
चिदादित्यमहातेजो, मृगतृष्ण जगच्छ्रियः ॥

भावार्थः—

कहां जाऊं ? किसे छोड़ूं ?
किसे ले लूं ? करूं क्या मैं ?
मैं इक तूफान क्यामतका हूँ ?
पुर-हैरत तमाशा मैं ॥
नहीं कुछ, जो नहीं मैं हूँ,
इधर मैं हूँ, ऊधर मैं हूँ।
मैं चाहूँ क्या ? किसे ढूंढूं,
सभोंमें ताना-बाना मैं ॥
मैं बातिन, मैं अयां, जेर-उ-जबर,
चप रास्त, पेश-उ-पस, ।
जहां मैं हर मकां मैं हर जमां,
हूंगा सदा था मैं ॥
अस्मै सूर्या चन्द्र मसामिचक्षे ।
श्रद्धेकमिन्द्र चरतो वितर्तुम् ॥

ॐ

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

नन्द-ग्रन्थमाला

इस मालाका उद्देश्य हिन्दीमें सुलभ मूल्यमें धार्मिक ग्रन्थोंको प्रकाशित करना है। इसमें अबतक निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं:—

१—श्रीमद्भगवद्गीता

मूल १६ पेजी बम्बइया टाइपोंमें बड़ी सुन्दरतासे छापी गयी है। प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य केवल लागतमात्र रक्खा गया है। भक्तजनोंको मंगाकर अवश्य प्रचार करना चाहिये। जिल्द सहित मूल्य ।≈)

२—रामायण

तुलसीकृत रामचरितमानसका शुद्ध पाठ

इस पोथीका पाठ संवत् १७२१ की लिखी एवं इससे भी पुरानी अन्यत्र छपी पोथियोंसे मिलाकर शोधा गया है। ऐसी शुद्ध पोथी इतने सस्ते दामोंमें ऐसी उत्तम छपाई-बंधाईकी और कहीं नहीं मिलती। सर्व-साधारणके लाभके लिये और शुद्ध पाठके लिये हमने इसका सम्पादन प्रसिद्ध विद्वान और साहित्य-मर्मज्ञ अध्यापक श्री रामदास गौड़ से कराया है।

इसमें आरम्भमें गोसांईजीका जीवनचरित्र भी है और अन्तमें कठिन शब्दोंका एक कोष दिया गया है। ५५० पृष्ठका मूल्य केवल लागतमात्र १) रेशमी जिल्द १।)

३—विष्णु सहस्र नाम

नित्य पाठ करनेके योग्य पुस्तक मोटे टाइपमें चित्रों सहित छापी गयी है। दाम केवल लागतमात्र रखा गया है। मूल्य सजिल्दका ≠) मात्र।

४—मनुस्मृति

(भाषा-टीका) मनुस्मृतिकी बड़ी सरल सुलभ टीका मोटे कागजपर, सुन्दर छपाई तथा मनोहर जिल्द सहित, पृष्ठ ६६८, मूल्य केवल १)